मिट्टी का कलंक

मिट्टी का कलंक

[अर्थात् कुसूम्बो : एक राजस्थानी आँचलिक उपन्यास]

उपन्यासकार
यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'

एन० डी० सहगल एण्ड सन्ज
दरीबा कलां, दिल्ली ।

भूमिका

श्री यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' जी का छठा उपन्यास "मिट्टी का कलंक" मैं पढ़ गया। इस उपन्यास में जिस वातावरण को और जिस विषय को लेखक ने चित्रित किया है, वह है राजस्थान की ह्रासोन्मुखी सामंती व्यवस्था का टूटता हुआ ढाँचा। जमींदारों और ठाकुरों के किसानों पर अत्याचार और नारी के प्रति एक भोग्य-वस्तु का-सा अमानवीय सम्बन्ध इस उपन्यास के दो मुख्य मूलाधार हैं। जहाँ तक रियासतों में राजनैतिक जागृति का प्रश्न है, उसमें जो न्यस्त स्वार्थ काम कर रहे थे उन सबका पूरा पर्दाफाश लेखक ने किया है। साऊ (हू) कार और राजपूती-चाल के अभिमानी बीकानेर नरेशों के आलूफा-मालूफा आदि का अच्छा चित्रण है। उपन्यास की कथावस्तु १९४६ से पूर्व की है, फिर भी (पृष्ठ १२७ पर) लेखक ने मास्टर जी के मुँह से जो कहलावाया है वह आज भी सच साबित हो रहा है।

"ये जागीरदार हर तरह से किसानों के शोषण के तरीके अपनाते हैं जिससे उनका आर्थिक विकास न हो। वे अपनी शक्ति से उनके संगठन व आन्दोलन को कुचलने की भरसक चेष्टा करते हैं ताकि वे एकता की अजेय शक्ति में एक जुट न हों। जब वे इन दो चेष्टाओं में विफल हो जाते हैं तो वे खेतिहारों के संगठन को छिन्न-भिन्न करने में अपनी बुद्धि दौड़ाते हैं। यह बुद्धि इसमें फूट के बीज बोने का प्रयास करती है। पर वर्तमान खेतिहरों के लिये शुभ भले ही न हो पर आनेवाला कल निश्चित रूप से इन्हीं खेतिहरों का है। जिस प्रकार आज हम सत्याग्रह व आन्दोलन करते हैं, उसी प्रकार उस समय ये जागीरदार अपने सड़े गले तत्वों को पुनर्जीवित करने के लिए इन्हीं रास्तों को अपनायेंगे। उस सड़ी लाश को जिन्हें दरअसल दफना ही देना चाहिये लेकर घूमेंगे। अपनी शक्तियों को विकास की ओर न लगाकर नाश की ओर प्रेरित करेंगे। मतलब यह है कि इनका भविष्य अन्धकारमय है।

इस राजनैतिक चित्र में लेखक ने सच्चे राजनैतिक मुकदमे के कागज़ों का, डाक्युमेंटों का उपयोग किया है (पृ० ६०)। उससे यथार्थता और बढ़ी है। स्टेट्स पीपल कांग्रेस की जो राह-चलते हुए झाँकी दी गई है, वह भी वास्तविकतापूर्ण है। मैं खुद रियासत में जन्मा, बचपन के शिक्षा और अध्ययन के प्राय: तीस वर्ष मैंने मध्यभारत की रियासती घिस-घिस और किच-किच में बिताये हैं। और मध्यभारत की हालत राजस्थान से भिन्न नहीं थी। इसलिये मुझे वह सब बहुत निकटता से मालूम है। लेखक ने उस आन्दोलन की केवल असली तसवीर ही पेश की है। इस प्रकार 'मानो क्रोम' में यानी काले और सफेद में व्यक्ति या संस्था का चित्रण, अब कुछ पुराना और कम स्वाभाविक जान पड़ता है। परन्तु शायद लेखक ने सामंतवाद के कृष्ण-पक्ष को और नग्न रूप में दरसाने के लिये यह ऐसा किया है। उद्देश्य शुभ है, परन्तु जैसा कि ४६ के बाद की राजनैतिक घटनाओं ने सिद्ध किया है, उसी समय के सामंत-विरोधी तत्व बाद में सामंतवाद से समझौता कर बैठे और जनता की आकांक्षाओं के साथ उन्होंने गद्दारी की। यह इतिहास भी भुलाने की बात नहीं। आज के विलीनीकृत रियासती इलाके में जो कुर्सियों के लिये छीना-झपटी, जो आपा-धापी और नेताई की होड़ सी नजर आती है; उसके बीज उस समय भी मौजूद थे। तसवीर पूरी होने के लिये जरा सी उसकी झलक भी जरूरी थी।

इस बात का प्रमाण मास्टर जी या झींटिया जैसे चरित्रों के निर्माण में जो रोमांटिक तत्त्व घुला-मिला है, उससे मिलता है। मैंने कुछ वर्ष पूर्व लक्ष्मीनारायण लाल के प्रथम उपन्यास 'धरती की आँखें' की भूमिका में यह बात लिखी थी और आज भी लिखना चाहता हूँ कि जमींदारी या सामंतवाद या पूँजीवाद शोषण या संप्रदायवाद जैसे समाज-शरीर में लगे रोगों को दूर करते समय रोमांटिक दृष्टिकोण से काम नहीं चल सकता। मुझे लगता है कि प्रस्तुत उपन्यास में प्रेम और प्रणय और स्त्री पुरुष सहआकर्षण के जो प्रसंग हैं, वे काफी काव्यात्मक ढंग से चित्रित हैं, परन्तु उसके उपन्यास की मुख्य वस्तु सामंतवाद के खंडहर

के चित्रण के साथ पूरा निर्वाह नहीं हुआ है। उन वर्णनों को पढ़कर मन में कहीं-कहीं उदासी जागती है, परन्तु कहीं-कहीं लेखक उनमें रस भी लेता है, ऐसा लगता है। यथार्थवादी चित्रण में अधिक तटस्थता की उपेक्षा होती है। कृष्णचन्द्र जी भी इस तटस्थता को पूरी तरह नहीं अपनाते।

जहाँ तक उपन्यास के शिल्प का प्रश्न है, लेखक ने आजकल जो आँचलिक उपन्यास लिखे जा रहे हैं, जैसे नागार्जुन का 'बलचनमा' या 'रेणु' का मैला आँचल' या शिवप्रसाद मिश्र का 'बहती गंगा' आदि, उन्हीं के अनुसार लोकगीतों और लोक-कथाओं का, देहाती मस्लों और कहावतों का खूब अच्छा उपयोग किया है। लेखक की उस अंचल के विषय में जानकारी घनी और सीधी अपनी है। यानी यह केवल पुस्तकों की मारफत या 'सेकेंड हैंड' अनुभूति नहीं है। उसी मात्रा में वह रंग भी लाई है। राजस्थान के कई चित्र सामने उभरकर आ जाते हैं। विशेषतः तीज त्याहारों के, गणगोर के, पुरानी लड़ाइयों के, स्त्री के कष्टमय जीवन के वीरों की निर्भयता के, त्याग के, बलिदान के। भाषा में भी स्थानिक रंग लाने की लेखक ने खूब कोशिश की है, और मेरा विश्वास है कि हिन्दी का जो भावी रूप बनेगा उसमें चोमासा (चौमासा), आवडेगा, रीस, भायली, बेगी-बेगी, हिवड़े, सोवणी, कूड़, गोली, बांकलड़ी, मुलक, घूंटो, टीलों, पावणा, अणखावणा, तिनख, टाबरों, डाकण, जमारा, मोखा, ओडी, लारे, जट्टू, मोट्यार, अमूज, लाग इत्यादि का बहुत ज्यादा हाथ रहेगा।

रियासतों की बुराइयों पर कन्हैयालाल गौबा की 'एच-एच' जैसे ही नाम की डा० मुल्कराज आनन्द की नयी अंग्रेजी किताब (हिन्दी में) 'एक था राजा', राहुल जी की 'मधुपुरी' आदि कई किताबें निकली हैं, जो उपन्यास के रूप में उसी ह्रासोन्मुखता की झांकी देती हैं। प्रस्तुत, पुस्तक भी उसी विषय की है। और मैं आशा करता हूँ कि इसका स्वागत होगा।

प्रभाकर माचवे

नई दिल्ली,

२८—६—५६

मैं इतना ही कहूँगा—

यह मेरा छठा उपन्यास है ।

इसका घटना स्थल बीकानेर के इर्द-गिर्द की कई स्थल घटनाओं पर आधारित है और लेखक ने घटनाओं के सत्य आधारों के साथ कल्पना का भी सहारा लिया है । उस कल्पना ने उपन्यास के कला पक्ष को मुखरित किया है । इसलिये मैं इसे राजस्थानी वातावरण पर आधारित उपन्यास ही कहूँगा ।

इस पुस्तक को लिखने में मुझे श्री सत्यदेव विद्यालंकार द्वारा सम्पादित "बीकानेर राज्य का राजनीति विकास और श्री मघाराम वैद्य" नामक पुस्तक से काफी सहायता मिली है अतः मैं उनका आभारी हूँ । और कृतज्ञ हूँ—प्रजा परिषद के उन तमाम कार्यकर्ताओं का जिन्होंने जनजागरण में रियासती नृशंस अत्याचारों को सहा ।

अन्त में मैं आदरणीय श्री अक्षयचन्द्र शर्मा (प्रिंसिपल विद्यामंदिर बीकानेर) का अत्यन्त अभारी हूँ जिनकी स्नेह रश्मियों ने मेरी बौद्धिक चेतना को अलोकित होने में सहयोग दिया है ।

पाठक ही मेरे सच्चे आलोचक हैं, उनकी राय की मैं प्रतीक्षा करूँगा ।

साले की होली
बीकानेर (राजस्थान)

यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'

रियासत पर पण्डित जवाहर लाल नेहरू—

"जहाँ विवाह के निमन्त्रण पत्र राज्य से सेंसर कराने पड़ते हैं, जहाँ पर्दे की ओट में जनता पर भीषण अत्याचार किये जाते हों और उनके प्रतिवाद में मन-गढ़न्त दलीलें दी जाती हों, उस राज्य का शासक इन्सान नहीं, हैवान है। आखिर ये जुल्म ज्यादती कब तक चलायेंगे ?"

ये उद्‌गार केवल बीकानेर के दमन चक्र से ही सम्बन्धित नहीं है, अपितु राजस्थान की समस्त रियासतों की जनता उस समय ऐसे ही दमन चक्र से त्रस्त थी।

समर्पण :—

पूज्यवर,
बाबा श्री मूलचन्द जी बिस्सा,
पिता श्री चुन्नीलाल जी बिस्सा,
अग्रज श्री अमरचन्द जी बिस्सा,
को सादर भेंट

'चन्द्र'

: १ :

'झींटिया ...."

खेतों की बालों को चूमती हुई यह संगीत-सी प्रिय और शहद-सी मीठी आवाज ध्वनित-प्रतिध्वनित हो उठी।

"अरे ओ झींटिया ! कहाँ मर गया, बोल तो सही।"

लहलहाते खेतों की झूमती जवान बालें पवन का स्पर्श पा हँस उठीं। उसकी भीनी-भीनी सुगन्ध 'ढोलकी' के मन में बस गई। उसकी प्रतीक्षा में बेचैन आँखें पल भर के लिए बन्द हो गईं जैसे वह दिवा स्वप्न देख रही हो। जैसे उसका मन-पंछी इन खेतों की विस्तृत हरीतिमा पर जी भर कर कुलाँचे भरना चाहता हो। वह कुछ क्षण तक मन्त्रमुग्ध-सी, निर्जीव-सी खड़ी रही कि किसी ने चुपके से उसकी दोनों आँखों को अपने दोनों हाथों से बन्द कर लिया।

वह चौंक उठी। किसी के स्पर्श से नारी-तन में जो सहज सिहरन दौड़ती है, वह उसके शरीर में दौड़ गई। वह हठात बोल पड़ी—"कुण (कौन) है ?'

"जरा जानो।" कहने वाले की आवाज में बहुत ही बनावट थी। ढोलकी ने अपने कोमल हाथों को उन दो हाथों पर फेरा और फिर बिगड़ कर बोली-—"मेरी आँखों पर से हाथ हटाले वरना ठीक नहीं रहेगा।"

"क्या ठीक नहीं रहेगा ?"

"सारा चूखा (रूखे सूखे बाल) खोसकर हाथ में दे दूंगी।"

"अच्छा, इत्ती रीस (क्रोध) ?"

"तू छोड़ेगा या ……।"

'मैं तो छोड़ने को तैयार हूँ, पर जरा पहचानकर बता दे । मैं इतना जरूर कहूँगा कि मैं तेरो पक्को भायलो (मित्र) ।"

"राम का मारा, तू ऐसे थोड़े ही मानेगा, तुझे अभी मजा चखाती हूँ ।" ढोलकी ने जोर लगाकर अपने हाथों से उसके हाथ पकड़े । फिर शरीर को ढीला कर जमीन पर गिरकर मुक्त हो गई और पलट कर देखा तो ठसके के साथ लम्बे स्वर में बोली—"तो आप हैं, उमराव जादे (रईस के बेटे) ।"

"जी हाँ !" अकड़कर भींटिये ने हुँकारा ।

'जी, हाँ !" मुँह बिचकाकर ढोलकी ने गुस्से से कहा पर उसके होठों पर अनायास ही हँसी थिरक उठी । वह हँसी मानो भींटिये के लिए वरदान सिद्ध हुई । झट कर वह उसके समीप जा बैठा ।

जैसे बिच्छू डंक मारने आया हो, और आदमी उससे दूर भागता हो, उसी तरह ढोलकी अपना आँचल संभालती उससे दूर जा बैठी और मुँह दूसरी ओर घुमाती हुई बोली—"यदि तू इस तरह तंग करेगा तो मैं यहाँ कभी नहीं आऊँगी ।"

"तू नहीं आयेगी तो मैं आजाऊँगा ।" भींटिए ने इतना कह मुट्ठी में मिट्टी भर ली और उसे सूंघने लगा ।

"क्यों ?' ढोलकी की आँखें औसत आकार से फैलकर भींटिये के चेहरे पर जम गईं ।

भींटिया मुस्कराता हुआ उसके पास आकर अजीब लहजे में बोला—"गाड़ी के पास बैल को आना ही पड़ेगा ।" वह कुछ रुककर बोला—'देख, ढोलकी ! यदि तू ही मुझसे नाराज हो गई तो……।" भींटिया गंभीर हो गया । उसकी दृष्टि मिट्टी पर जमी हुई थी ।

"तो… ?" ढोलकी की आँखों में प्रश्न बोल उठा ।

"तो मैं गाँव छोड़कर चला जाऊँगा ।"

"गाँव !······नहीं झींटिया, ऐसा मत करना, मुझे तेरे बिना एक पल नहीं आवड़ेगा (मन नहीं लगेगा)।"

"मैं तेरा कौन हूँ ?"

"तू····· !" ढोलकी आज भी सदैव की भाँति चुप हो गई।

वह इस प्रश्न का कभी भी उत्तर नहीं दे सकती थी। वास्तव में वह इस प्रश्न का क्या उत्तर दे, जानती ही नहीं थी।

"मैं क्या जानूँ ?" चिड़िया जिस तरह चहकती है, इस तरह वह भोलेपन से चहक उठी—"तू ही बता दे।"

"मैं, ले सुन।"

"मीनिया हो, मीनिया !" नजदीक के खेत से राजाराम की आवाज सुनाई पड़ी।

स्वप्न से जैसे जागी हो उसी तरह ढोलकी उतावली से बोली—"ले, जल्दी से रोटी खा, साँझ हो गई है। राजाराम मीनिया को बुला रहा है। तेरे पास आने से कितना मोड़ा (देर) हो जाता है ?" इतना कह वह एक चिकने कपड़े में बंधी रोटियों को खोलने लगी।

झींटिया उदास स्वर में बोला—"ढोलकी ! मेरा है भी कौन तेरे सिवा ? न आगे है और न पीछे और एक दिन तू भी मुझे छोड़कर चली जायगी।

"कहाँ ?" ढोलकी ने रोटी उसके सामने रख दी।

"सासरे, नड़दल (ननद) बाई के बीर (भाई) के घर··· ··

"धत्। बेगी-बेगी (जल्दी-जल्दी) रोटी खा, देख अँधियारा हो रहा है, तेरी बातों में वक्त का पता ही नहीं चलता।" वह कृतिम रोष से जल्दी-जल्दी बोली।

"अब तू ही खिला दे।"

"क्यों ?"

"देख नहीं रही है कि मेरे हाथ मिट्टी से भरे हैं।"

"हाँ, देख रही हूँ कि गाड़ी देख तेरे पाँव सूजने लगे हैं।"

"जो भी समझ, खिलाना तो तुझे ही पड़ेगा ।"

"तो मुँह फाड़ ।"

ढोलकी ने कौर दिया । झींटिया खाने लगा । खाता-खाता गंभीर स्वर में बोला—"जब तू सासरे चली जायगी तब मुझे इस तरह कौन खिलाएगा ?"

"अपनी जबान को ताला लगा ले । यदि बोलना नहीं आता है तो मत बोला कर । कह दिया कि मैं तुझे छोड़कर कहीं भी नहीं जाऊँगी । तू मुझे भोत ही चोखा लगता है और काका भी तो तुझे चाहता है ।"

'सच ?"

"नहीं, झूठ ।" उसने उसके रूखे-सूखे बालों में अपनी अँगुलियाँ उलझा दीं।

खेतों की बालें हवा के झोंके से हिल उठीं ।

ढोलकी हठात् उठती हुई बोली—"मैं चली झींटिया, तड़के आऊँगी ।"

"कल छाछ की रबड़ी बनाकर लाना ।"

"और गुड़ ?"

"वह भी ले आना ।" और देखते-देखते ढोलकी उसकी आँखों से ओझल हो गई ।"

झींटिया धीरे-धीरे नवाले हलक से पानी के सहारे उतारने लगा जैसे ढोलकी के बिना उसके लिए यह खाना हलक से उतारना अत्यन्त दूभर हो रहा है ।

तभी खेत में खड़खड़ाहट की आवाज सुनाई पड़ी । झींटिया चौंक कर इस तरह खड़ा हो गया जैसे कोई जंगली जानवर आ गया हो और उस पर झपटना चाहता हो । उसने अपना पैंतरा बदला कि पीछे से जोर का अट्टहास सुनाई पड़ा ।

झींटिया गर्जा—"कौन है ?"

"आदमी ।"

"गैला बाबा (पागल बाबा)।"

"तो तू समझता था कि कोई जंगली जानवर हूँगा।" वह बोला—"अरे भींटिया! तू तो मुझसे प्यार किया कर ढोलकी की तरह। आज मैं तुम दोनों की बात सुन रहा था। कितनी मीठी-मीठी बातें कर रहे थे तुम दोनों, जी चाहा कि मैं भी आकर कुछ बातें करूँ पर यह सोचकर कि मैं अब प्यार की बातें क्या करूँगा? बुड्ढा हो गया हूँ, बुड्ढा। बुड्ढा और प्रेम! छिः छिः! ठूंठ भी कभी हरा हो सकता है? अच्छा भींटिया! वे रोटियाँ कहाँ हैं?"

भींटिया रोटियों को छिपाता हुआ भयभीत दृष्टि से गैले को देखने लगा। गैले की आँखों में भूख की आग से उत्पन्न एक विचलित करने वाली हिंसा थी।

"मैं कहता हूँ, रोटियाँ मुझे दे दे, मैं भूखा हूँ।" गैले के चेहरे पर भयंकर दानवी रेखायें नाच उठीं।

"लो,…लो, यह रोटियाँ?"—भींटिये ने काँपते हुए हाथों से गैला की ओर रोटियाँ बढ़ा दीं। उसको ऐसा महसूस हुआ जैसे कोई उसका गला दबोच रहा है।

गैले ने रोटियों को देखकर कहा—"तू बहुत ही चोखा है, भींटिया, भगवान् तेरी प्रीत को बनाये रखे।" उसका हाथ महात्मा की तरह आशीर्वाद देने उठ गया।

"प्रीत? क्या बकते हो गैले?"

"गैला बकता नहीं, भींटिया, प्रीत छिपाई न छुपे, समझे? तू ढोलकी को चाहता है। तूने अपने हिवड़े (हृदय) में उसकी सोवणी (सुहानी) सूरत बसा रखी, तूने अपने मन के मन्दिर में उसकी मोहनी मूरत बना रखी। क्या मैं कूड़ बोलता? कूड़ (झूठ) बोलने की मेरी आदत नहीं है, भींटिया।"

भींटिया का चेहरा दूध-सा सफेद हो गया। गैले का क्या भरोसा? जहाँ चाहेगा, ढोल पीटता फिरेगा। बड़ी मुश्किल होगी। सहमता-

सहमता भींटिया बोला—"यह बात किसी से कहना मत। शायद काका को बुरा लगे। वे यह सोचने लगे कि भींटिये ने जिस थाली में खाया उसी में छेद करने लगा।"

"कहूँगा, जरूर कहूँगा। मैंने अभी कहा न, प्रीत छुपाई न छुपे।"

भींटिये ने सोच लिया कि यह गैला जरूर अनर्थ करेगा। बली हुई रोटी पलटी जा सके तो यह भी समझ सके।

"अच्छा, कह देना, मैं भी किसी से नहीं डरता हूँ।"

"शाबास, प्रीत में किसी से भी नहीं डरना चाहिए। पाल पर चल, आज मैं तुम्हें एक कहानी सुनाऊँगा, प्रेम की कहानी। चलो।"

वे दोनों खेत की पाल पर पहुँचे।

चाँदनी दूध की तरह सफेद प्रकाश धरती पर फैला रही थी। खेत इतने शांत हो गये थे कि पवन के हल्के झोंके से पैदा हुआ कम्पन भी स्पष्ट सुनाई पड़ जाता था। पाल पर जमी मुलायम रेत ठंडी होने लग गई थी। इस रेत की तासीर भी अजीब-सी है कि झट गर्म और पटठंडी।

गैले ने उसे बिठाते हुए कहा—"बैठ जा, भींटिया, आज मैं तुम्हें कहानी सुनाऊँगा, प्रीत की कहानी—

बहुत वर्ष पहले की बात है।

चोट्यालागढ़ के ठाकुर के दो लड़के थे—नाग जी और खींव जी।

खींव जी बहुत ही पराक्रमी थे और थे बड़े ही हठी। उन्होंने विवाह करने से इन्कार कर दिया। एक दिन उनकी भाभी, जो चित्तौड़-गढ़ की थी, उसने ताना दिया—"यदि ऐसी ही अक्कड़ है तो कोई ले आइये न पूंगल देश की पद्मिनी।"

खींव जी ने वैसा ही उत्तर दिया—"यह बात है, भाभी सा! तो मैं अवश्य पूंगल देश की पद्मिनी लाकर ही बताऊँगा।"

इस पर भाभी खिलखिलाकर हंस पड़ी—"झूपड़ी में रहकर महलों का सपना! देवर जी! कहीं यह न हो जावे कि काली-कलूटी मिल रही है, वह भी न मिले। कहने वालों ने सच ही कहा कि आधी ने

छोड़ पूरी ने धावे, आधी मिले न पूरी पांवे ।"

भाभी का व्यंग तेज कटार के समान था। खींव जी तिलमिला उठे। मूँछों पर ताव देते हुए बोले—"भाभी सा, किसी गोली (दासी) के पेट से नहीं जन्मा हूँ। राजपूत का बच्चा हूँ तो वचन को सच्चा करके ही बताऊँगा।"

तब हठात् भाभी बोली—"तो चित्तौड़गढ़ की राजकुंवारी आभलदे को नैनों की ज्योति बनाकर ले आइये। पद्मिनी से कम खूबसूरत नहीं है। सुना है कि उसकी सुन्दरता के आगे पद्मिनी भी पानी भरती है। साक्षात् अप्सरा है, अप्सरा।"

"तो मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि उसे ही ब्याह कर लाऊँगा या अपने प्राण दे दूंगा।"

"खींव जी !" तभी उनके भाई नाग जी आये। उन्होंने अपनी पत्नी साभलदे को बहुत ही डाँटा और खींव जी को समझाया कि भाभियाँ ऐसे ही हँसी-मजाक करती रहती हैं, लुगाइयों (स्त्रियों) की बात को ज्यादा महत्त्व नहीं देना चाहिए पर खींव जी नहीं माने और उन्होंने चित्तौड़गढ़ की ओर प्रस्थान कर ही दिया।

भींटिया ! घर कूचा-घर मंजिलाँ, करते-करते खींव जी का घोड़ा दूसरे दिन चित्तौड़गढ़ के जनाना बाग में पहुँचा जहाँ आभलदे अपनी बाँदियों के संग झूला झूल रही थी। वह खींव जी की सुन्दरता पर मुग्ध हो गई और दोनों में प्रेम हो गया, सच्चा प्रेम।

रात का समय हुआ।

आभलदे के महल के आगे बड़े-बड़े सन्तरियों का पहरा था। वह बेचारी बिना खींव जी के जल के बिना मछली की तरह तड़फने लगी। जब चारों ओर से निराश हो गई तो छलक-छलक आँसू बहाने लगी

लेकिन परमात्मा प्रेमियों को तड़फते नहीं देख सकता। जब आभलदे ने खिड़की की राह चाँद को देखकर एक दोहा गुनगुनाया—

[१]"चांदा थारे चानणे सूती पलंग बिछाय,
जब जागू तब अेकली, मरूं कटारी खाय।"

तब उसके दिमाग में एक उपाय सूझा—"मैं क्यों नहीं इस खिड़की से रस्सी फैंक कर खींव जी को महल में बुलवालूं ?"

उसने वैसा ही किया और खींव जी महल में आ गये।

आधी रात तक उन दोनों ने चौपड़-पासा खेला। प्रेम की बातें की और सवेरे होते-होते खींव जी वापस चला गया।

इसी तरह हर रात खींव जी आता था और तड़के वापस चला जाता था।

एक दिन तड़के ही आभलदे के महल में राजा और रानी पधारें। उस समय आभलदे और खींव जी दोनों जने मस्ती की नींद सो रहे थे। गोली ने घबराये स्वर में उतावली से कहा—"बाई सा! राजा जी पधार रहे हैं।"

"हैं!" असह्य प्रहार-सा आभलदे के हृदय पर लगा।

"तो ?" गोली विस्फारित नयनों से आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगी।

"खींव जी! जल्दी से खिड़की से कूदिये।"

खींव जी ने तुरन्त कूदने की तैयारी की। पर मन नहीं माना। वियोग का दुख उनकी आँखों में छा गया। मोतियों जैसे आँसू उनकी आँखों से छलक पड़े। बोले—"प्रिये! अब मिलना कब होगा ?"

"जब प्रभु चाहेगा ?"

"मुझे भूलोगी तो नहीं ?" खींवजी का हृदय भर आया।

इस पर आभलदे ने दृढ़ स्वर में उत्तर दिया—

१हे चन्द्र! मैं तेरे प्रकाश में पलंग बिछाकर सो गई हूँ और जब जागती हूँ तब अपने आप को अकेली पाती हूँ। जी चाहता है कि कटार खाकर मर जाऊँ।

[1]"आभा ढम्बर ढह पड़े, धरती धान न होय ,
जे दिवले पाणी जले, तो दूजा साजन होय ।"

यानी उसने प्रतीज्ञा की कि यदि मेरा कोई प्रीतम होगा तो अकेला तू ही ।

खींवजी कूद पड़ा लेकिन उसकी तलवार वहीं पर छूट गई जिस पर उसका नाम-गाम का पता खुदा था ।

फिर क्या था ? सारे रावले (अन्तःपुर) में, सारे गढ़ में, सारे शहर में यह बात हवा की भाँति फैल गई । सामन्तों एवं सरदारों ने इस बात को अपना अपमान समझा । उन्होंने एक ही स्वर में गर्ज कर कहा—"एक राजा की लड़की के साथ नाकुछ ठाकुर का लड़का रात बिताकर चला गया, ऐसी कुल कलंकिनी की गर्दन धड़ से अलग कर देनी चाहिए ।"

आभलदे के बाप ने स्वयं गर्ज कर कहा—"चाहिए नहीं, काट दो, मेरी सात पीढ़ी में भी ऐसी निर्लज्ज धीव (पुत्री) पैदा नहीं हुई । पर पुरुष के साथ रात......क्या यही सावित्री और सीता की बेटियों के लिए शेष रह गया है ?"

पर आभलदे की माँ अपनी बेटी की ढाल बनी रही और यह तय किया गया कि भविष्य में आभलदे को रावले के बाहर एक कदम भी नहीं रखने दिया जाय ।

हुआ भी ऐसा ही, भींटिया ! बेचारी प्रेम-दीवानी आभलदे खींव जी की याद में सूखकर काँटा होने लगी ।

एक दिन रानी-सा ने राजा जी से विनती की—"महाराज ! आभलदे इस बन्दी-गृह में घुट-घुट कर मर रही है । यदि आप आज्ञा दें तो वह पुष्कर तीर्थ कर आये । धर्म का धर्म होगा और बाई-सा का

---

[1]आकाश गिर पड़े । धरती पर धान न हो और यदि दीये में पानी जले तो मेरा भी दूसरा पति हो सकता है ।

हवा पानी भी बदल जाएगा।"

सो एक दिन आभलदे पुष्कर चली।

पर सच बात तो यह है, कि पुष्कर तो एक बहाना मात्र था, दर-असल उसे अपने प्रेमी खींव जी से मिलना था।

खींवजी के गाँव के समीप ही डेरा डाला गया। स्वामीभक्त बांदी द्वारा खींवजी को इस बात की खबर पहुँचाई गई।

पर खेमे के आगे कड़े सिपाहियों का पहरा था।

क्या करता खींवजी ?

भाभी के पाँव पकड़े। भाभी ने मजाक से कहा—"देवरजी, मैं आपको अपने संग ले तो चलूंगी पर आपको मूँछें मुंडवानी पड़ेंगी।"

"मूंछें ! खींवजी की आँखें विस्फारित हो गईं।

"हाँ, बाँकड़ली (बलदार) मूँछें, बिना मूँछें मुंडवाये आप लुगाई कैसे बनेंगे ?"

"तो क्या···मु···झे···लुगाई···बन···ना ?"

बीच में ही भाभी मुलक (मुस्का) कर बोली—"हाँ, आपको लुगाई ही बनना पड़ेगा।"

"ऐसा तो नहीं हो सकता।"

"फिर टापते रहिये, भंवर जी। सुना है, राजकुंवारी आभलदे आपकी दीवानी है, आप से चार नजर होने के लिए जोगन-सा वेश बनाकर घर-घर की फेरी लगा रही हैं और एक आप।"

तभी गाँव की प्रसिद्ध ढोलनी गढ़ के पीछे की ओर अपने मधुर स्वर में गा उठी—

"रसिया म्हें जोगण बणी थारी रे

थारे खातर म्हाँरा साँवरा, घर-घर दूवूंली म्हें फेरी रे।"

दो पंक्तियाँ सुनते ही भाभी सा ने चुटकी लेते हुए लम्बे स्वर में कहा—'यह बोली इस ढोलनी की नहीं है, मेरे देवर जी ! उसी आभलदे की है, जो आपसे मिलने के लिये यहाँ आई हुई है।"

ढोलनी का स्वर और दर्दीला हो गया। ऐसा महसूस होता था जैसे उसके दर्द में सारी जनता का दर्द है। वैसी तड़प है जैसी इस रेतीली शुष्क प्रान्त की प्रत्येक विरहण के स्वर में होती है—

[१]"चितवन चोट कालजे लागे, नैणा छलकै नीर, हो···
इयें मरज कांई न दवा है, छिण-छिण बढ़ती पीर रे, रसिया···
दिन नईं चैण, रैन नईं निंदिया सुपने में तू आजा, हो···
म्हें बावली, तू बेदरदी, नैण से नैण मिलाजा रे···
रसिया मैं जोगण बणी थारी रे···

गीत रुका। ऐसा महसूस हुआ कि जैसे सारे वातावरण में, पृथ्वी-आकाश में, तन में, मन में हर जगह एक उदासी छा गई। भींटिया, उस ढोलनी के गले में बड़ा दर्द था। जो सुनता था वह मस्त हो जाता था।

खींवजी मस्त हो गये। उसकी भाभी मस्त हो गई। क्या कमाल से हिये को छूने वाला गीत गाया था—रसिया म्हें जोगण बणी थारी रे···। खींवजी की भाभी थोड़ी देर तक मन्त्र-मुग्ध रही और फिर हठात बोली—"देवरजी! आप अब भी मूंछों के चक्कर में पड़े हैं। मैं कहती हूँ कि काट मारिये न, इन निगोड़ी मूँछों को, घाघरा और

१रसिया! मैं जोगन तुम्हारी बन चुकी हूँ। तुम्हारे लिए ऐ मेरे प्रीतम मैं घर-घर फेरी दूंगी।

चितवन की चोट कलेजे पर लगी जिससे नैन से अश्रु छलक पड़े हैं। इस प्रेम रूपी रोग की कोई दवा ही नहीं है, बल्कि इसकी पीड़ा पल-पल बढ़ती जाती है।

मुझे दिन को चैन नहीं मिलती है, रात को नींद नहीं आती है अतः तू सपने में आजा। मैं पागल हूँ और तू निर्मम है तभी तो नैन से नैन नहीं मिलाता है। हे रसिया! मैं जोगन तुम्हारी बन चुकी हूँ—लेखक द्वारा लिखित।

ओढ़ना ओढ़ मेरे संग चल पड़िये। आभलदे से मिला दूंगी।"

"पण (पर) मैं मूंछें किसी भी सूरत में नहीं मुंडवाऊंगा।"

"आप लुगाई तो बन जायेंगे?"

"हाँ!" उनके अन्तःकरण ने उनके मस्तिष्क की आज्ञा लिए बिना ही कह दिया।

भाभी गम्भीर हो गई। चुटकी बजाती हुई बोली—"एक बात मेरी समझ में आई है कि आप घूंटों (घूंघट) निकाल कर इन निगोड़ी मूँछों को लूका (लुकाना) लीजियेगा।"

"हाँ, यह बात पत्ते की हुई, चलिए।"

खींवजी को लुगाई बनना पड़ा। प्रेम का मामला कुछ ऐसा ही बेढ़ब होता है। मिलन हुआ। खींव जी और आभलदे ने अपने-अपने मन की बात पूरी की। लेकिन प्रीत छुपाई न छुपे। झींटिया, इस बात की खबर किसी भी तरह चित्तौड़गढ़ पहुँच गई। फिर क्या था? रज-पूताई चीख पड़ा। उसकी भुजायें फड़कने लगीं। निश्चय किया गया कि आभलदे का ब्याह खींवजी से कर दिया जाय?

खींवजी अपने हिवड़े में खुशियों का समुन्दर लिए चित्तौड़गढ़ पहुँचे जहाँ भरे दरबार में उनको कत्ल कर दिया गया।

झींटिया भय से चिहुँक उठा—"कत्ल कर दिया गया? क्यों, बाबा? उसे तो ब्याह के लिये बुलाया गया था।

"इसे राजनीति कहते हैं, झींटिया राजनीति, जिसमें धर्म-कर्म, सच-झूठ, भला-बुरा, बदमासी-भलाई, सभी इस तरह वेश बदलती है जिस तरह अपने गाँव का बहुरूपिया। सामन्तों एवं सरदारों ने इस कत्ल को अपनी अक्ल की वह बढ़िया उपज बताई जिसने उनकी आन-शान की रक्षा की। प्राण पर ही तो शान का झण्डा लहराया है, बेटा।"

गैले ने कथा आगे बढ़ाई—कवि कहता है कि आभलदे ने पार्वती जी की प्रार्थना की, सच्चे दिल से विनती की, रो-रोकर, चीख-चीखकर अरज की जिससे माँ पार्वती का हृदय पिघल गया और उसने आभलदे

को वरदान देना चाहा। आभलदे ने खींव जी को माँगा। पार्वती आभलदे का मुँह देखती रह गई पर वचन की बात ठहरी। उसने महादेव को पुकारा। महादेव आ तो गये पर उन्हें पार्वती पर बड़ी रिस आई।

कहने लगे—"मैं तेरे कहने से किस-किसको जिंदा करता फिरूँगा ?"

शिवजी की यह बात पार्वती के आत्म-सम्मान पर तीखे तीर सी लगी। वह फुत्कारती हुई बोली—"यह बात है तो लो, मैं उड़ी चिड़िया बनकर, फिर पी लीजियेगा भाँग-धतूरा।

शिवजी के छक्के छूट गये। कहीं पार्वती चिड़िया उड़ चली तो भाँग घोंटने की बड़ी और कड़ी समस्या खड़ी हो जायेगी। इसलिए उन्होंने खींव जी को दुबारा जीवन-दान दिया।

तब संसार की कोई भी ताकत उन्हें अलग नहीं कर सकी। वे अमर हो गये।

कहानी खत्म हो गई।

झींटिया गैले की आँखों में आँखें गड़ाकर थोड़ा-सा मुलकते हुए बोला—"आखिर प्रेम करने वाले मिल ही जाते हैं।"

"पहले मिलते थे, पर अब नहीं।"

"क्यों ?" विस्मय भर आया उसकी आवाज में।

"आजकल शिव—पार्वती का सत् कम हो गया है। अब वे मरे हुए को वापस जिंदा नहीं कर सकते।" उसके स्वर में व्यंग भरा कटाक्ष था।

"क्यों ?"

"कलियुग है न ? इसलिए बेटा, प्रीत मत करो। यह प्रीत बहुत बुरी है, अपने बदले जीवन ले लेती है, जीवन।"

और गैला वेदना में डूबा हुआ, धीरे-धीरे रेत पर अपने पग के चिन्ह छोड़कर चलता बना।

झींटिया भारी मन लिए शाँत स्वर में गुनगुना उठा—

[1]"थारी तो म्हाँरी प्रीतलड़ी रे गोरी,
अणबोली मती जाय, बोली तो होती ये……'

---

[1]तेरी और मेरी प्रीत, हे गोरी ! अनबोली ही खत्म हो रही है, जरा बोल तो सही।

: २ :

"वास्तव में कोई भी वस्तु संसार में न तो सुन्दर है, न असुन्दर मनुष्य की मानसिक स्थिति पर उसकी सुन्दरता और असुन्दरता निर्भर है।" विश्व के महान् नाट्यकार विलियम शेक्सपीयर के नाटक 'मर्चेन्ट ऑफ वेनिस' की यह पंक्तियाँ गाँव के नये मास्टर नारायण के मस्तिष्क में ज्वार-भाटे की तरह आ-जा रही थीं।

रात का समय था। एकदम शांति छाई हुई थी कि पेड़ के पत्ते की भी हिलने की खड़खड़ाहट सुनाई पड़ जाती थी।

नारायण दीये के हल्के प्रकाश में चिंतामग्न बैठा था। उसके सामने ढोलकी का चेहरा नाच रहा था।

गाँव में यदि कोई लड़की उसका मन मोह सकी वह थी—ढोलकी। अल्हड़ और चचल।

पहली बार जब वह इस गाँव में आया था तब सैर करने टीलों (धोरों) की ओर चला गया था।

संध्या का समय था। गर्म लू बहनी बन्द हो गई थी। गाँव के पशु गोचर भूमि से लौट रहे थे। उनके गले में बंधे बड़े-बड़े घटे टन···टन···टन···टना टन···की गंभीर आवाज करते हुए अपने-अपने स्वामियों के घरों की ओर जा रहे थे।

मास्टर रेत पर पेट के बल सोया हुआ उन पशुओं के पंक्तिबद्ध जाने को देख रहा था। सोच रहा था—"आदमी से अधिक ये सभ्य हैं। दो-दो की जोड़ी कितनी बराबरी से चल रही है कि एक पाँव का भी फर्क नहीं और एक हमारी स्काउट रैली थी—बेचारा स्काउट मास्टर चीखता-चिल्लाता परेशान हो उठता था, उसके ललाट पर पसीना उभर आता था पर लड़कों के कदम आपस में नहीं मिलते थे।······सबके

सब गधे थे । गधे ?···तो फिर मैं भी उनमें से गधा नम्बर एक था । धत् तेरे की, मैंने अपने आपको गधा कह दिया, बिना सींग का गधा" और वह मन-ही-मन हँस पड़ा ।

"कुण है ?" एक अपरिचित-सी ध्वनि संगीत के तारों सी झंकृत हो उठी ।

मास्टर ने करवट बदली—एक जवान छोकरी उसके सामने खड़ी थी । चार नजर होते ही उस लड़की ने तुरन्त उसकी ओर पीठ कर दी ।

"तूने मेरी ओर पीठ क्यों कर दी ?"

"आप कौन हैं ?"

"मैं मास्टर हूँ, कल ही शहर से आया हूँ ?"

'शहर से !" युवती उसके सम्मुख हो गई । मास्टर ने उसकी आँखों में कुतूहल देखा ।

"तुझे इचरज क्यों हो रहा है ?" मास्टर ने गंभीरता से पूछा ।

"इचरज होना ही चाहिये, देखो न मास्टरजी, आप कितने दुर्बल हैं ? जैसे आपने घी-दूध आँखों से देखा ही नहीं है ?"

"तो अब तू दिखा दे ।" मास्टर ने चुटकी भरी ।

"जरूर, मास्टरजी, अभी आप हमारे पावणे (मेहमान) हैं ।"

मास्टर ने जरा मुस्करा के दूसरी ओर मुँह घूमाकर कहा—"न भई, न, मैं पावणा बनने को कतई तैयार नहीं हूँ ।"

"क्यों ?" युवती के ललाट पर सलवटें पड़ गई ।

"इसलिए कि तीन दिन पावण और चौथे दिन अणखावणा (जो अच्छा न लगे) । अपनी बेइज्जती कौन करायेगा ?" अब मास्टर के स्वर में बनावटी गम्भीरता थी ।

"मास्टर जी ! हम गाँव वाले ऐसे नहीं हैं । धान और चिथड़ों से मिनख (मनुष्य) को ही बेसी समझते हैं । मिनख के सामने क्या कद्र है तो मुट्ठी अनाज की ? मास्टरजी, यह गाँव है, जहाँ पावणों की आवा-भगत करना धर्म समझा जाता है ।"

मास्टर को युवती की दुख-छाई आकृति पर पश्चाताप हुआ। वह सोचने लगा कि उसने खामखा ही ऐसा प्रश्न करके इस बेचारी को कष्ट दिया है। अतः क्षमायाचना भरे स्वर में बोला—"खमा (क्षमा) कर दे, मुझसे भूल हो गई।"

"कोई बात नहीं। अच्छा, पहले बताइये मास्टर जी, कि आपने डेरा कहाँ डाला है?" उसने बात का रुख बदलते हुए कहा।

"पाठशाला के पास वाले लाल घर में।"

"रोटी-बाटी का क्या इन्तजाम किया?"

"आज तो भूखा ही सो जाऊँगा और कल से कोई इन्तजाम कर लूँगा या हाथ से ही बना लूँगा।"

"भूखे मत सोइये, भूखे सोने से आत्मा को कष्ट पहुँचता है, आत्मा को कष्ट देने से भगवान बिराजी हो जाता है। इसलिए आज मैं आपके लिए खाना पकाकर ला दूँगी।"

मास्टर ने एक बार रोकना चाहा, पर फिर न जाने क्या सोचकर चुप हो गया। उसे ढोलकी का आना और उससे बातबीच करना अच्छा लग रहा था।

"मैं जाती हूँ।"

"जा, पर तेरा नाम?"

"ढोलकी।"

ढोलकी हवा में अपना आँचल उड़ाती संध्या के गहरे होते अन्धेरे में अदृश्य हो गई।

× × ×

मास्टर के घर के आगे ही चार-पाँच छोरे तालिका बजा-बजाकर गा रहे थे :—

"किसका झींटिया, किसकी टम।
चाल म्हाँरी ढोलकी ढमाकढम।"

छोरों का स्वर पतला और मीठा था। मास्टर का मन रीझ

गया। चुपचाप सुनने लगा।

ढोलकी ने उसके ध्यान को भंग किया—"क्या देख रहे हो मास्टर जी ?"

"देख नहीं रहा हूँ, सुन रहा हूँ—बच्चों का गीत।"

"यह कोई गीत है, हूँ ! चलिए भीतर।"

तभी छोरों ने ढोलकी को देख लिया। लगे नाच-नाचकर जोर से गाने :—

"किसका भींटिया, किसकी टम।

चाल म्हाँरी ढोलकी ढमाकढम॥"

छोरों ने तब और उछल-उछलकर यह वाक्य दोहराना शुरू किया :—

"चाल म्हाँरी ढोलकी ढमाकढम

ढोलकी ढमाकढम......

ढोलकी डमाकढम......

ढमाकढम......"

ढोलकी ताव में आ गई। भड़ककर बोली—"चुप हो जाओ वर्ना मैं ठीक कर दूंगी।"

उसकी इस डांट का असर उल्टा ही हुआ। छोरे और जोश में भर उठे। ढोलकी ढमाकढम......

ढोलकी ढमाकढम......

ढमाकढम......

मास्टर इस मजेदार बात पर खिल-खिलाकर हँस पड़ा। ढोलकी बिगड़कर बोली—"आपको हँसी सूझ रही है, और मेरा जी जल रहा है।" उसकी आँखों में नाराजगी झलक रही थी।

ढोलकी घर में घुस गई।

मास्टर के होठों पर अब भी हँसी नाच रही थी।

"आपको हँसी क्यों आ रही है ?"

"तुझे गुस्सा क्यों आ रहा है ?"

"छोरों पर।"

"क्यों ?"

"मुझे चिढ़ाते हैं न ?"

"कौन-सी तू लूली-लंगड़ी, अंधी, बहरी, काली-कोजी (खराब) है कि तुझे ये छोरे चिढ़ाने लगे।"

'ढोलकी ढमाकढम—यह क्या है ? चिढ़ाना नहीं तो क्या मुझे राजी करने के लिए यह गाया जाता है ?" गर्म स्वर में ढोलकी एक ही साँस में बोल गई।

"यह तो बच्चों का खेल है।"

"खेल ? हूँ ! अच्छा आप यह रोटियाँ खा लीजिए, मैं चली।" ढोलकी की नाराजगी अब मास्टर से छिपी न रह सकी।

"अरी क्यों ?" क्या पावणों की खातिरदारी इसी तरह की जाती है ?"

अभी मेरा मिजाज गर्म है, कहीं झगड़ा हो जायेगा तो अच्छा नहीं रहेगा, मैं चलती हूँ।"

"लो !" मास्टर ने अपनी जेब से एक रुपये का नोट निकाल उसे देना चाहा।

"यह हमारे गाँव का दस्तूर नहीं है, मास्टर जी।"

ढोलकी एक विचित्र हँसी-हँसकर चली गई। उस विचित्र हँसी के अर्थ के रहस्य को जानने में मास्टर बहुत देर तक उलझा रहा।

× × ×

मास्टर ने उसी रात सपना देखा कि ढोलकी चाँद के रथ पर चढ़कर आकाश से उतर रही है। उसने अत्यन्त सुन्दर व चमकदार वस्त्र पहन रखे हैं तथा उसके सिर पर मुकुट है जिसमें झिलमिलाते तारे जड़े हुए हैं। उसका अप्रतिम सौन्दर्य स्वर्ण-सज्जित होकर मुखरित हो उठा है।

उसके सुन्दर होठों पर वही विचित्र हँसी है जिसे उसने खाना देकर जाते हुए ढोलकी के होठों पर देखा था।

वह मास्टर के समीप आई। मास्टर भी एक राजकुमार की पोशाक में था।

ढोलकी ने आते ही मास्टर के हाथों में अपने हाथ दे दिये और मधुर स्वर में बोली—"मास्टर जी, मैंने सुना है कि तुम मुझे प्यार करते हो? पहली ही दृष्टि में तुमने अपने जीवन की समस्त महत्त्वाकांक्षाओं और अपनत्व मुझे दे दिया है। तुम सोचते भी हो कि ढोलकी मेरी हो जाय तो अगम जग मेरे लिये सुगम हो जाये।"

"हाँ ढोलकी! मैं तुझे हृदय से चाहता हूँ।"

"छल तो नहीं कर रहे हो?"

"यह तू क्या कह रही है?"

"मास्टर, मैं मर्दों की जात पहचानती हूँ। सौंदर्य पर आसक्त होकर प्रेम का स्वर अलापना वे खूब जानते हैं।"..."और शारीरिक लिप्सा की तृप्ति के बाद वे नारी को पाँव की जूती कहकर सम्बोधित करते हैं। तुम तो ऐसा नहीं करोगे?"

"नहीं, मैं प्रेम को परमात्मा समझता हूँ और परमात्मा से कपट करने वाले को कभी भी सुफल की प्राप्ति नहीं होती।"

"तो तुम परमात्मा से कभी भी छल नहीं करोगे?"

"हाँ, नहीं।"

"तुम सच्चे प्रेमी हो, आत्मा से प्रेम करने वाले हो। लेकिन एक बात बताओगे, मास्टर जी?"

"क्या?"

"आखिर तुम सिर्फ मुझे ही प्यार क्यों करते हो?"

"क्योंकि मैं तुझे चाहता हूँ।"

"केवल मुझे ही क्यों चाहते हो? मैं सुन्दर हूँ इसलिए?"

"नहीं।"

"जवान हूँ इसलिए ?"

"नहीं।"

"दयालु हूँ इसलिए ?"

"नहीं।"

"फिर मुझे प्यार क्यों करते हो ?"

"मैं तुझसे सच्चा प्यार करता हूँ।"

"सच्चा प्यार बलिदान माँगता है।"

"प्राण भी दे दूँगा।"

"बड़ा त्याग कर रहे हो, फिर तुम क्या दूर रहकर मुझसे प्यार नहीं कर सकते ?" हल्का व्यंग ढोलकी के स्वर में था।

"नहीं।"

"क्यों ?"

"क्योंकि मैं तेरी हर वस्तु को प्यार करता हूँ।"

"इस तन को भी।"

"हाँ।"

"फिर मेरे बाह्य-सौंदर्य को प्राप्त करने के लिए इस पिशाच से लड़ो इसकी मृत्यु ही तुम्हारी फतह है, विजय है।"

मास्टर ने देखा कि धरती पर भूकम्प आ रहा है। पेड़-पौधे, महल-मकान सब-के-सब ढह रहे हैं। नदियों के सारे रुख नृशंस विध्वंश लिए बदल गए हैं जिनमें ठीक उस ओर ढोलकी जैसी पोशाकें पहने हजारों युगल प्रणाली थपेड़ों में हाहाकार मचाकर नष्ट-भ्रष्ट हो रहे हैं।

मन्दिरों के पुजारी माला जपकर अपने उद्धार की प्रार्थना कर रहे हैं कि प्रभो ! हमें इस संकट से उबारो।

और तभी उसने देखा एक काला दैत्य उसकी ओर बढ़ता चला आ रहा है। पौराणिक कुँभकरण की भाँति विशाल और भयानक वह दैत्य अपने पाँवों से राजकुमारों व राजकुमारियों का नाश करता, अट्टहास करता, हाथों को फाँसी के फन्दे की शक्ल में बनाता, उसके बिल्कुल

नजदीक आ जाता है ।

ढोलकी चीख कर कहती है—"मास्टर ! बचाओ, इस राक्षस से मुझे बचाओ ।"

"यह कौन है ?"

"समाज ?"

"समाज ? यह हमें क्यों मार रहा है ?"

"तुम परदेशी हो, यहाँ गाँव वालों की सेवा करने आये थे पर तुम अपना कर्त्तव्य-शिक्षा-दान भूलकर प्रेम लीला करने लगे । इसे गाँव सहन नहीं कर सकता ।"

"प्रेम करना कोई पाप नहीं ।"

"ठीक है, पर समाज इसमें गाँव की हेठी की बात सोचता है । वह समझता है कि शहर का यह मनुष्य गाँव की इज्जत लेकर चला जाएगा । अब मुझे हासिल करना चाहते हो तो समाज से लड़ो या अपना बलिदान करो ।"

"बलिदान ? नहीं, मैं अपना जीवन बलिदान नहीं कर सकता, तुझसे प्यारा मुझे अपना जीवन है, महत्वपूर्ण और अमूल्य जीवन मैं अपना जीवन नहीं दूंगा । ढोलकी ! मैं अपना जीवन नहीं दूंगा ।" वह पूरे जोर-शोर से चीखा । उसकी आवाज ध्वनित-प्रतिध्वनित हो उठी ।

ढोलकी फिर चाँद के रथ पर चढ़कर आकाश की ओर उड़ने को तैयार हुई । उड़ने के पूर्व उसने मुस्करा कर व्यंग भरे स्वर में कहा—"तरुण की बहकी आँखें प्रीत के बाह्य-सौंदर्य पर मुग्ध होकर तरुणी पर सामाजिक अधिकार पाने की चेष्टा करती है पर सच यह है कि वे आँखें प्यार को अन्तर में उतार ही नहीं सकती ।"

धीरे-धीरे रथ आकाश की ओर उड़ चला ।

दैत्य का अट्टहास मौन हँसी में बदल चुका था ।

× × ×

भयानक सपने के कारण मास्टर को फिर नींद नहीं आई । गाँव

की काली रात का यह काला सपना कितना निर्दयी था, उसकी कल्पना भी वह नहीं कर सकता था।

फिर वह अपने आप पर विचारने लगा कि क्यों उसने ढोलकी की विचित्र हँसी को लेकर जीवन के उत्तेजित क्षणों का भला-बुरा ताना बुना ? क्यों उसने उसकी जवानी के बारे में पाप भरे विचार मन में उपजाये ? यह उन्हीं पापों का फल है कि उसने कुवाँरी धरती के बारे में बुरी बातें सोची। वह एक मास्टर है। गाँव में शिक्षा की एक पुण्यमयी ज्योति जलाने के लिए आया है जिसके प्रकाश में यह गाँव अपनी जिन्दगी की असलियत जान सके। न्याय-अन्याय का मापदण्ड गरीबी और अमीरी के पलड़ों पर नहीं, सच्चाई के रास्ते कर सके और वह आते ही एक युवती के जो अनपढ़, गवार और भोली है, माँसल तन की रूपरेखा पर मुग्ध होकर अपने को भटका गया। वह युवती उसे इतनी खूबसूरत क्यों लगी ? उसका ना कुछ सौंदर्य उसके मन पर काले बादलों की तरह क्यों छा गया जिससे वह अपने ज्ञान को भूल बैठा ? कितना नादान है वह, कर्त्तव्य-विमुख, विचलित। नहीं, उसे अपने जीवन के हर क्षण को संयत दायरे में रखना चाहिये अन्यथा समाज का दैत्य...।

"मास्टर जी !" ढोलकी की आवाज आई।

"कौन ? ढोलकी।"

"जी, मास्टरजी, दूध देने आई हूँ। माँ ने कहा है कि मास्टर जी को हर रोज सेर भर दूध दे आया कर जिससे सेहत चोखी रहेगी और वे टाबरों (बच्चों) को बढ़िया तरीके से पढ़ा सकेंगे।"

"क्या भाव देगी तेरी माँ यह दूध ?"

"उसने कहा है कि घर के माणसों (मनुष्य) से क्या भाव-ताव ? जो दे देंगे, वहीं ले लेंगे और माँ ने हँसकर एक कहावत कही :—

[1]"भाई रो धन भाई खायो,

---

[1]कोई नुकसान की बात नहीं।

बिना बुलाए जीमण आयो,
आखड़ियो पण पड़ियो नईं,
घी ढुलियों तो मूँगा महीं,"

मास्टर हँस पड़ा—"क्या तेरी माँ कहावत भी बनाता है ?"

"मेरी माँ !" ढोलकी बर्तन में दूध डालती-डालती रुक गई और आश्चर्य से मास्टर की ओर आँखें जमाती हुई बोली—"क्या कहते हैं, मास्टर जी, क्या मेरी माँ कहावतें बनाती हैं ? उसके लिए तो काला अक्षर भैंस बराबर है।"

उसने बर्तन में दूध डालकर एक आले में रखा और दूध के बर्तन को कपड़े से ढँकती हुई शाँत स्वर में बोली—"आपको एक खाना पकाने वाली की जरूरत है न ?"

"हाँ !"

"आप जगन्नाथ की बेटी को रख लीजिए। बेचारी बड़ी तकलीफ में है। ऊपर से कंगाली में आटा और गीला हो गया कि उसका ससुर भी मर गया। पंचायत ने उस बुड्ढे के क्रिया-कर्म के नाम पर गरीब का घर भी लूट लिया। बेचारी को अब खाने के लाले पड़ रहे है।" अन्त का वाक्य बोलते-बोलते ढोलकी का स्वर दर्द से भर उठा। उसकी आँखों में दुख की हल्की छाया-सी पैदा हो गई। बोलने की तन्मयता से उसका आँचल भी नियत स्थान से ढलक पड़ा, लेकिन मास्टर अपनी आँखें जमीन पर गड़ाये हुए था। रात का भयानक सपना अब भी उसके हृदय और मस्तिष्क पर छाया हुआ था।

"उसका घरवाला कहाँ है ?" मास्टर ने अनमने भाव से पूछा।

"वह तो बहुत पहले ही मर गया। अम्बा काकी कहती हैं कि यह हरखा डाकण (डायन) है, इसने ही अपने खसम को पकाकर खाया है। क्या यह सच है, मास्टर जी ?"

"नहीं, ढोलकी। तू उसे भेज दे, मैं उसे कपड़ा और रोटी दोनों दूँगा। नक़द पैसा नहीं दे सकता।"

"नकद माँगता ही कौन है ? उसे तो दो-चार रूखी-सूखी रोटियाँ चाहिये। पर, मास्टर जी, हरखा बहुत ही भली है । किसी का भी बुरा नहीं करती । गाय है, गाय ।" कहती-कहती ढोलकी फुदकती हुई चली गई ।

मास्टर न जाने किसी विचार में खो गया कि उसे यह भी पता न चलाकि हरखा उसके सूने घर का कूड़ा-करकट बुहार रही है और ढोलकी गर्व-भरी आँखों से उसे देख रही है ।

× × ×

भोर हो गई थी ।

चिड़ियो की चक-चक तथा गायों के रंभाने ने सोने वाले प्राणियों में नई चेतना भर दी थी । कहीं-कही मुर्गे की बाँग भी सुनाई दे जाती थी ।

मास्टर के घर में बुहारने की आवाज साफ आ रही थी । इस आवाज ने मास्टर का ध्यान क्षणभर के लिए विचलित कर दिया— "हरखा ! आज मोड़ी (देर से) क्यों आई ? उसे जरा ताड़ना चाहिये, पर थोड़ा प्यार से ।" लेकिन जब हरखा ने उसके कमरे में प्रवेश किया तो मास्टर संस्कृत की पुस्तक निकाल कर पढ़ने लगा—

"येषां न विद्या न तपो न दानम्,
ज्ञानं न शील न गुणों न धर्मः ।
ते मृर्त्यलोके भुव भारभूता,
मनुष्यरुपेण मृगाश्चरन्ति ।

अर्थात् जो मनुष्य न विद्वान हैं, न तपस्वी है, न दानी हैं, न ज्ञानी हैं, न सदाचारी हैं, न धर्मात्मा हैं, वे पृथ्वी पर भार बढ़ाने वाले पशु है, जो मनुष्य के रूप में इधर-उधर घूमते रहते हैं ।

"मास्टर जी !" हरखा ने सहमते हुए पुकारा ।

"क्या है ?"

"आज मुझे थोड़ा मोड़ा हो गया, आँख निगोड़ी खुली ही नहीं ।" उसने अपने आपको कोसने का अभिनय किया ।

"कोई बात नहीं । मैंने सोचा कि तेरी तबियत खराब हो गई होगी इसलिए तू नहीं आई है । अब तुरत-फुरत दूध गर्म कर ला ।"

"चुटकी बजाते लाई ।" हरखा तुरन्त अपने काम में लग गई । वह दूध को चूल्हे पर चढ़ाकर मास्टर के पास आकर उत्सुकता से बोली—"मास्टर जी, छग्गू कह रहा था कि आप एक 'विनती' पाठशाला के लिए तैयार कर रहे हैं । आप करिये, मैं अभी बढ़िया दूध गर्म कर लाती हूँ ।"

हरखा फिर कमरे से बाहर चली गई ।

मास्टर का मन हरखा के निर्दोष सौंदर्य पर जब-जब जमता था तब-तब सपने के दैत्य से वह घबरा जाता । उसे एक अजीब-सा सन्देह होने लगा था कि गाँव का हर बूढ़ा आदमी वही भयंकर खूँखार दैत्य है और उसके मन की हर एक हरकत को समझने की चेष्टा कर रहा है । मास्टर के चेहरे पर घबराहट की रेखाएँ नाचतीं और मिटती थीं । वह गम्भीरतापूर्वक सोचने लगता था कि भगवान ने इन्सान बनाकर उसे विशाल-हृदयी क्यों नहीं बनाया ? उसे संकीर्णता के दायरे से दूर क्यों नही रखा ? सौंदर्य की प्रतिमूर्ति उसके सम्मुख रखकर समाज की दीवार उसके बीच बनाकर उसे इतना मजबूर क्यों कर दिया कि वह उस सौन्दर्य को विशाल हृदय से देख भी न सके ।

'मास्टर जी, दूध ।"

"रख दो, खाँड (चीनी) तो पूरी है न ?

"तीन चम्मच । जरा चखकर देखिये ।"

मास्टर ने दूध चखकर कहा—"आज तूने दूध बहुत ही बढ़िया बनाया है, जी चाहता है कि तुझे इनाम दूँ ।"

हरखा अपनी इस सफलता पर मन-ही-मन मुस्करा उठी ।

"बोलो, क्या इनाम लोगी ?"

"इनाम···मैं···मैं···।" हरखा लज्जा गई ।

"बोलती क्यों नहीं ? शर्माती क्यों है ?" मास्टर ने झट से हरखा

का हाथ पकड़ लिया। यह सब पलक झपकते हुआ। क्यों हुआ ? यह मास्टर खुद नहीं जान सका। लेकिन जब हरखा ने हाथ छुड़ाने की कोशिश नहीं की तब मास्टर की दृष्टि हरखा के चेहरे की ओर उठी। हरखा की आँखें जमीन की ओर झुकी हुई थीं। उसके कपोल आरक्त थे। वह धीरे-धीरे काँप सी रही थी।

कुछ क्षण तक दोनों किंकर्त्तव्य विमूढ़ से खड़े रहे। फिर हरखा ने सहमते हुए कहा—"मेरा हाथ छोड़ दीजिए।"

मास्टर ने हाथ छोड़ दिया—"ओह ! हरखा, मुझे माफकर देना, मुझे तेरा हाथ नहीं पकड़ना चाहिए था।" मास्टर आतुर हो उठा। उसका स्वर काँप रहा था।

हरखा रसोईघर में चली गई। बर्तनों की आवाज से मालूम होता था कि वह खाना बनाने की तैयारी में है। पर मास्टर वाचाल हो उठा। आदमी इतना कमजोर क्यों है ? वह क्यों नहीं अपने हृदय के उस झंझा को रोक पाता जो कल उसे पतन के गहरे गढ्ढे में फेंकने वाला है ?

मास्टर दूध की ओर बिना ध्यान दिये सोच रहा था, मैंने हरखा का हाथ क्यों पकड़ा ? वह मेरी कौन है ? मुझे ऐसा नहीं करना चाहिए किसी की मजबूरी का बेजा फायदा उठाना हम जैसे बुद्धिजीवियों का काम नहीं। वह अपने मन में क्या समझती होगी ? सोचती होगी कि यह शहर वाले सबके सब लफंगे होते हैं। गाँव की इज्जत से खेलने आते हैं। उनकी बहू-बेटियों की आबरू को रोटी के बदले खरीदना चाहते हैं।" मास्टर ग्लानि से भर उठा। उसे अपने मन पर बहुत क्रोध आया, "यह मन का पंछी ही बुरा है। न यह उड़ता और न मैं पाप करता। चलो, चलो, मुझे हरखा से साफ कह देना चाहिये कि मैंने तेरा हाथ कोई बुरी नीयत से नहीं पकड़ा था। किस नीयत से पकड़ा, यह भी बताना मेरे लिए कठिन है। पर इतना जरूर जानता हूँ कि यह सब अप्रत्याशित हुआ है।"

दूध ठंडा हो गया था। मास्टर ने उसमें अँगुली डालकर आह के साथ कहा—"ओह ! ठंडा हो गया—पानी की तरह।"

वह रसोईघर की ओर चला। हरखा चूल्हे की आग को तेज करने में संलग्न थी।

मास्टर ने कठोर किन्तु काँपते स्वर में कहा—"चूल्हा मत जलाओ। आज मैं खाना नहीं खाऊँगा।"

"क्यों ?" हरखा के मुँह से हठात यह शब्द निकला और उसकी आँखों में भय नाच उठा। वह मास्टर को रोकने के लिए दरवाजे की ओर भागी, पुकारा भी, पर मास्टर ने मुड़कर देखा तक नहीं। हरखा गहरी चिंता में डूब गई। मास्टर का न बोलना इस बात की ओर साफ संकेत था कि वह उससे नाराज है। उसकी नाराजगी का मतलब है कि उसकी नौकरी की समाप्ति। इसलिए वह रो उठी।

हरखा की रुआसी मुख-मुद्रा पर धीरे-धीरे एक शांत स्निग्ध छा गई जैसे किसी पाषाण प्रतिमा पर वर्षा के कारण सहज सौंदर्य की दीप्ति छा जाती है। जैसे उसका उन्मन आनन कर रहा है कि उसके तन के अतुलनीय सौन्दर्य में पेट भी है।

पेट की स्मृति ही साहस को दुर्बल बना देती है,

सौन्दर्य को कलंकित होने पर विवश कर देती है।

रोने पर भी उसकी विचार-धारा उसके दिमाग में तूफान उठाती रही कि यदि वह मास्टर जी को हाथ छोड़ने के लिए नहीं कहती तो वे बिराजी नहीं होते, उन्हें रिस (क्रोध) नहीं आती। उन्हें रिस में लाकर उसने अच्छा नहीं किया। उसने अपने आपको झिड़का -"हाथ पकड़ लिया जिससे मेरा कौन-सा धर्म-करम डिग गया, कौन-सी मैं अपवित्र हो गई, कौन-सी मेरी नाक काट गई और यदि काम-काज हाथ से निकल गया तो,'''तो मैं भूखी मर जाऊँगी, दाने-दाने की मोहताज हो जाऊँगी और फिर मुझे ठाकुर-सा के डेरे में काम करने जाना पड़ेगा, कारिन्दा दामोदरसिंह मुझसे छेड़खानी करेगा। नहीं, नहीं, मैं मास्टर जी से छिमा

(क्षमा) मांग लूंगी । कहूँगी— मैं तो आपकी शरण में हूँ, मुझे जो भी दंड दे दीजिए । यह हाथ एक बार नहीं सौ बार पकड़िए, आपको कौन मना करता है । पर मुझे अपने यहाँ से मत निकालिए ।" और वह मास्टर के बिस्तर पर पुन: सो गई ।

ठीक चार बजे मास्टर के पाठशाला की छुट्टी की घंटी बजी ।

अब मास्टर का चेहरा फूल-सा खिला हुआ था । स्वस्थ था, निर्मल था, उस जल की तरह जिसकी गन्दगी को ज्वार बहाकर ले गया हो । उसके चेहरे पर अलौकिक प्रसन्नता झलक रही थी जो प्रसन्नता किसी को पराजित करने के बाद मिलती है । उसकी आँखों में धैर्य की ज्योति चमक रही थी और मुद्रा में गंभीरता ।

घर में घुसते ही उसने पुकारा—"हरखा ।"

हरखा नींद में सोई-खोई सिसकियाँ ले रही थी । उसकी सिसकियों से मास्टर को पता लगा कि उसके जाने के बाद यह जी भरकर रोई होगी । यह परकटे पंछी की तरह तड़पी होगी ।

"हरखा ! ओ हरखा !! उठ न ।" मास्टर ने हरखा के पाँव को हल्के से हिलाया । वह सकपका उठी । देखा तो सन्न रह गई । अपने आँचल को सँभालती हुई डरे हुए स्वर में कहने लगी—"मुझे छिमा कर दीजिये, मास्टर जी ।"

"क्षमा ?" वह पूरा बोल भी नहीं कह पाया था कि हरखा एक साँस में कह उठी—मैंने आपको नाराज कर दिया था न । लीजिए, यह रहा मेरा हाथ, एक बार नहीं सौ बार पकड़िए, पर मुझे काम-काज से अलग मत करिए, मैं आपके पाँव पडती हूँ, मास्टर जी !" वह फिर रो उठी । उसकी घिग्घी बंध गई ।

मास्टर का हृदय दया से भर उठा । दिल ने जोर से कहा कि इस दु:खी इन्सान को सीने से लगाकर सांत्वना से उसकी झोली भर दे, पर दिमाग ने उसे रोका कि यह कार्य महान् है लेकिन महानता का मतलब यह भूखी नारी क्या समझेगी ? वह समझेगी कि मास्टर…।

"हरखा !" मास्टर ने संयत स्वर में पूछा—"खाना बनाया है ?"

"हाँ।"

"ला, पहले खाना खिलादे, बड़ी जोर की भूख लगी है।"

हरखा खाना परोसने लगी। मास्टर तारीफ के पुल बाँधता हुआ खाना खाने लगा।

हरखा को उदास देखकर उससे नहीं रहा गया। उसने उसे हल्की-सी डाँट पिलाई—"आज तेरा मूंडा (मुँह) उतरा हुआ क्यों है ? चिड़िया की ज्यूँ चहकती क्यों नहीं, मुलकती क्यों नहीं ?"

हरखा ने अपने होंठों पर बनावटी हँसी लाने की बेकार चेष्टा की। वह हँसी भी, पर उसमें वह जीवन कहाँ था जो बसन्त की ताजगी अपने साथ लाता है।

: ३ :

आकाश की काली घटाओं के साथ उमड़ता हुआ चोमासा (पावस ऋतु) आया। क्षितिज का अरुणिम होंठ चूमता हुआ बादलों का एक टुकड़ा गगन की काली घटाओं की ओर बढ़ने लगा जिससे सूरज आग के गोले की तरह घूमता एक पल के लिए नजर आया।

गाँव के बच्चे उस सूरज को कुतूहल भरी दृष्टि से देख देखकर तालियाँ बजा रहे थे और हो-होकर चिल्ला रहे थे।

इतने में उसी सूरज की नीचे से जोर से अन्धड़ उठा। बच्चे अपने-अपने घर की ओर भागने लगे—"आँधी आई···आँधी आई।"

भींटिया ढोलकी के पिता चौधरी पुरखाराम की गायों को दाना-पानी दे रहा था। अन्धड़ को देखकर वह घास के ढेर की ओर भागा और उस पर ऊन की छाँटी रखकर एक पत्थर का टुकड़ा ऊपर से रख दिया

ना कि घास उड़े नहीं । फिर गायों के दाने-पानी में लग गया ।

ढोलकी अपनी माँ का खाना बनाने में हाथ बंटा रही थी । अँधेरा होते देख अधैर्य से बोली—"माँ, तू कहे तो घास की ढेरी को सम्भाल आऊँ ?"

माँ की जबान करेले की सी कड़वी थी, करेला भी कैसा, नीम चढ़ा। भड़कती हुई बोली—"वह राजा साहब का बच्चा क्या करेगा साँझ-सवेरे चार सेर आटा खा-खाकर फूलकर हाथी हुआ जा रहा है ।" तवे पर सिकती रोटी को दूसरी ओर उलटती हुई वह थोड़ी देर के लिए रुक-कर बोली—"तेरा बाप तो गले में जंजाल बाँधता ही फिरता है । जिस आदमी को सारे गाँव में कोई नहीं रखता उसे तेरा बाप सिर पर चढ़ा कर ले आता है ।"

ढोलकी बुड्ढों की तरह लम्बे स्वर में बोली—"माँ जिस माणस के जी में दया नहीं, उस मिनख का जमारा (जन्म) ही व्यर्थ है ।"

माँ मुँह बिगाड़ती हुई बोली—"अरे, वाह ! तू तो ऐसा बोल रही है जैसे मेरी मरी हुई दादी मसान (श्मशान) से उठ कर आ गई हो ।"

"इसमें बिगड़ने की क्या बात है ?" ढोलकी ने भी त्योरी बदली ।

"सिर मत खा, जा देख आ ।" माँ ने मुँह चढ़ाकर झिड़क दिया ।

ढोलकी मुँह बिचका कर बाहर निकली ।

अब घनघोर अन्धेरा छा चुका था । अन्धड़ के जोर से पेड़-पौधे झुक गए थे । धूल इतने जोर से उड़ रही थी कि आँख तक खुल नहीं पा रही थी । ढोलकी एक पल के लिए बाहर निकलकर वापस भीतर घुस गई । भीतर से ही उसने पुकारा, "झींटिया, अरे ओ झींटिया !"

झींटिया घर की बाड़ के फलसे (मुख्य दरवाजा) पर बनी झोंपड़ी से ही बोला—"क्या है ?"

"घास उड़ती तो नहीं है ?"

"नहीं, मैंने उस पर छाँटी डाल दी है, तू चिन्ता न कर, और सुन, घर से बाहर मत आना, आओगी तो धूल से आँखें भर जायेंगी ।"

लेकिन भीटिया ने देखा कि ढोलकी अन्धड़ का सामना करती हुई उसकी झोंपड़ी में आ गई है। उसके सारे बाल बिखर गए है तथा धूल बड़ी मात्रा में जमी हुई दिखलाई पड़ रही है। होंठो पर भी हल्की-हल्की रेत की पपड़ी जम गई है।

भीटिया कुछ देर तक उसे देखता रहा। फिर स्नेह भरे स्वर में बोला—"मैंने तुझे मना किया था, फिर तू क्यों आई ?"

ढोलकी ने उसे स्नेह से घूरा—"तुझे देखने।"

"मुझे देखने ? मुझे हुआ क्या था ?"

"मैंने सोचा कि कहीं तू अन्धड़ में उड़ तो नही गया है।" और वह उसके पास बैठ गई, "सच तो यह है, कि माँ से पिंड छुड़ाने में तेरे कन्ने (पास) आ गई। कौन रोटियाँ बेले ? मेरी तो हथेलियों में पीड़ा होने लगी।"

"सुन, ढोलकी, काम-काज से जी नहीं चुराना चाहिए।"

"क्यों ?"

"सासरे में ननद ताने देगी।"

"देने दो, हाँ, आज फिर बरखा होगी, अब बरखा न हो तो चोखी (अच्छी)। अपने खेत पूरे जोश पर हैं।" ढोलकी गम्भीर हो गई।

तभी आकाश गरजा।

बिजलियाँ घटाओं का कलेजा चीरती हुई चमक उठीं। किसानों की आँखें आकाश की ओर उठ गई। पानी बरस पड़ा। गिरती हुई बूँदों को ढोलकी और भींटिया एकटक देख रहे थे। अभी पाँच मिनट भी नहीं हुए थे कि बूँदें थम गईं। ढोलकी ने विहँस कर कहा—"ईश्वर ने हमारी प्रार्थना सुन ली।"

"राख (खाक) सुन ली।" भींटिया सरोष बोला—"यदि मेंह जोरदार बरसता और पानी का मोखा (नाला) ठाकुर सा के खेत का सत्यानाश कर देता तो कितना चोखा होता ?"

"क्यों ? तू किसी के लिए इतनी खोटी क्यों सोचता है ?"

"ठाकुर सा की हवेली के पूरब की ओर जो खेत है न, वह मेरा अपना ही खेत है, जिसे इस ठाकुर के बच्चे ने खोंस (छीन) लिया।"

"क्यों ?"

"अपना अन्नदाता है न, अन्न देना तो दूर रहा, मुँह का निवाला और खोंस लेता है। बड़ा अन्यायी है।" झींटिया की आँखों में क्रोध की हल्की-हल्की चिनगारियाँ फूटीं, जिन्हें देखकर ढोलकी सहम गई। "और वह साहूकार भी दूसरा काला साँप है।" वह पुनः बोला।

"तू रीस में लाल-पीला न हुआ कर, मेरा तो जी बैठा जाता है। हँस, मैं हाथ जोड़ती हूँ, झींटिया तू हँस दे।" और झींटिया के होठों पर सूखी हँसी नाच उठी।

"मैं रोटी लेकर आती हूँ, तब तक तू हाथ-मुँह धोले।"

ढोलकी झींटिया की ओर बिना देखे ही चली गई।

× × ×

सुबह हुई। आकाश मंजी हुई काँसे की थाली की तरह एकदम साफ व चमकदार था। गायों के रंभाने की आवाज आ रही थी। ढोलकी की तमाम गायें खड़ी-खड़ी जुगाली कर रही थीं। पूरी बीस गायें-भैंसें थीं चौधरी की, जिनकी देख-भाल आजकल झींटिया ही करता था। सहायक के रूप में थी, ढोलकी।

ढोलकी ने "गूणिया" (दूध दुहने का विशेष बर्तन) झींटिये के हाथ में देते हुए कहा, 'जल्दी-जल्दी गायों को दुह ले, काका ने कहा है कि हम दोनों को खेत जल्दी पहुँचना है।"

मैं अभी दुह लेता हूँ, लेकिन मुझे बड़ी वाली ओडी (साग-सब्जी या घास लाने की तिनकों की बनी विशेष टोकरी) लेकर जाना है, इसलिए तू पहले चली जा, मैं लारे (पीछे) आ जाऊँगा।" ढोलकी 'हाँ' के संकेत से सिर हिलाकर चल पड़ी।

सूरज आकाश पर चढ़ने लगा था। झींटिया खेतों से गुजरता हुआ जा रहा था। किसान मस्ती में झूमते हुए गा रहे थे।

*अे कुण बावे बाजारों में बदली,
अे कुण बावे मोठ-मेवा मिसरी,
भलेरी रुत आई म्हारा देस

झींटिया गीत की तल्लीनता में इतना खो गया कि खुद ही ओडी को बजा-बजाकर गाने लगा। वह गीत के गाने की धुन में इतना लीन हो गया कि अपने खेत से बहुत दूर निकल गया। गाँव के सबसे बड़े खेजड़े के पास आकर उसका स्वप्न भंग हुआ, "हैं! मैं अपना खेत भी छोड़ आया।"

झींटिया को अब भी अपने खेत से हार्दिक लगाव था। वह आता-जाता थोड़ी देर के लिए अपने खेत की पाल पर बैठकर ठाकुर व साहूकार की मिली-भगत पर विचार किया करता था। उस समय उसकी आँखों के आगे जीवन का ताण्डव नंगा होकर नाच उठता था।

बात प्रथम महायुद्ध के समय की थी।

गाँव के ठाकुर के स्वामी नगर-नरेश ने अंग्रेजों के प्रति अपनी अटूट श्रद्धा का परिचय देने के लिए सैनिक भेजने शुरू किये। ऐसा मालूम पड़ता था कि राजपूताने के सारे राजे-महाराजे दिल्ली की सार्वभौमिक सत्ता वायसराय के सामने अपना-अपना रुतबा दिखाने के लिए होड़ करने लग गये हैं। होड़ थी, युद्ध की आग में मनुष्यों की आहुति कौन राजा कितनी दे सकता है? जो जितनी ज्यादा देगा वही स्वामी के प्रति ईमानदार होने का तगमा जीतेगा।

हमारे पराक्रमी, तेजस्वी, धर्मपरायण राजा वैसे प्रजापालक थे ही, साथ ही अंग्रेजों के स्वामीभक्त गुलाम भी थे। उनकी गुलामी ही उनको वफादारी के तगमे धड़ाधड़ दिला रही थी और क्यों न दिलाती? अंग्रेजों ने उन्हें अपना गुलाम बनाकर अकर्मण्यता का वरदान जो प्रदान कर दिया था और इनके नीचे जो जागीरदार, पट्टेदार, ठिकाने वाले रहते थे। वे बेचारे गुलामों के गुलाम थे, इसलिए वे विशेष रूप से स्वामी-

---

* राजस्थान का लोक गीत

भक्त थे। उनकी गुलामी नीचे दर्जे तक पहुँच चुकी थी कि अपने राजा को राजी करने के लिये वे लड़कियाँ तक पेश किया करते थे। गाँव के ठाकुर ने राजा की आज्ञा पर चौधरी पुरखाराम को यह हुक्म दिया कि वह अपने गाँव से बीस-पच्चीस जवान फौज में भर्ती होने के लिए दें। चौधरी कुछ देर तक सोचता रहा, इसके बाद मुँह उतारता हुआ बोला, "मैं ऐसा काम नहीं कर सकूँगा। गाँव का कोई किसान अपनी खेती को छोड़कर मौत के मुंह में नहीं जायेगा।"

ठाकुर को यह कोरा उत्तर अच्छा नहीं लगा। लेकिन वह जानता था कि चौधरी पढ़ा-लिखा है। शहर आता-जाता है। शहर में खद्दरधारियों के भाषण भी सुनता है। कहता है कि गाँधी बाबा सबको सिखाता है कि अँग्रेजों के हम दास नहीं रहेंगे। ठाकुर को उस शब्द को बोलने में बड़ी कठिनाई होती, सुतन्तरता। एक रोज ठाकुर ने सहमते-सहमते चौधरी मे पूछा—"चौधरी, यह सुतन्तरता क्या होती है?"

'मैं क्या जानूं, ठाकुर! लेकिन सार मैं कुछ-कुछ जरूर समझता हूँ कि आदमी को किसी का गुलाम बनकर नहीं रहना चाहिए।"

ठाकुर को इससे बड़ी रीस आई। आज तक गाँव भर में कोई भी ठाकुर को इस तरह रूखा जवाब नहीं दे सका था। ठाकुर प्रभु का अंश है, गाँव का अन्नदाता है, माई-बाप है। फिर भला उसके सामने सरलता का, शिष्टता का त्याग करना महापाप न हो तो और क्या हो?

आज फिर ठाकुर को चौधरी पर रीस आई। क्रोध से मुंह फेरता हुआ ठाकुर हौले से गरजा, "चौधरी, सीधे मुँह बात करनी भी नहीं आती है, तुझे।"

"क्यों, ठाकुर? मैंने कोई बुरी बात तो नहीं कही।"

"फिर भी, तुझे जरा यह सोचकर बात करनी चाहिए कि हम ठाकुर हैं, अन्नदाता हैं।" ठाकुर ने मूँछों पर ताव दिया।

"जानता हूँ, ठाकुर, लेकिन मैं दो हरुफ पढ़कर यह भी जान गया हूँ कि अन्नदाता और किसान का रिश्ता बहुत ही पवित्र होता है। पर अब ठाकुर किसानों को लूटता है और किसान लुटता जा रहा है।

ठाकुर, गाँव भर में मैं खुश क्यों हूँ, इसलिए मैं इतना जानता हूँ कि साहूकार और तुम अपनी बहियों में क्या लिखते हो ?"

ठाकुर चौधरी पर झल्ला पड़ा—"उपदेश मत दो, मैं जो पूछता हूँ, उसका जवाब दो, मुझे तेरे गाँव से बीस रंगरूट चाहिए, मोटे-तगड़े, हट्टे-कट्टे। मैं चाहता हूँ कि यह काम करके तू बीस-तीस रुपए कमा ले। आखिर है तो तू अपने गाँव का चौधरी ही।"

चौधरी का स्वर बिल्कुल रूखा हो गया, "अरे ठाकुर, मैं पाप की कमाई कहाँ रखूंगा, कौन खाने वाला बैठा है ? इतने सारे कुल (कुटुम्ब) में एक ही तो छोरी है। उसके लिए भगवान का दिया बहुत है।"

"तेरी मर्जी, मैं तो भर्ती करूँगा ही।"

"और कोई नहीं होगा तो ?"

ठाकुर विहँस पड़ा—"कौन नहीं होगा ? जो मेरे गाँव में रहेगा, उसे मेरा हुक्म मानना ही पड़ेगा।"

चौधरी अनमना-सा चला आया।

इसके बाद ठाकुर ने अपने गाँवों के सबसे तगड़े बीस नौजवानों को बुलाकर फौज में भर्ती होने को कहा। उनमें से आधे तो इसलिए तैयार हो गये क्योंकि वे राजपूत थे। राजपूतों के लिए युद्ध में जाना गौरव की बात थी और तीन को अनिच्छापूर्वक ही 'हाँ' करनी पड़ी क्योंकि वे बेचारे दरोगे थे। ठाकुर के दहेज में आये गोले। शेष सात जो किसान थे, उन्होंने ठाकुर से हाथ जोड़कर कह दिया कि वे फौज में भर्ती नहीं होंगे। उनके लिए बहुत काम-धन्धा है। उनके अपने खेत हैं और खेतों के होते वे लड़ाई में नहीं जा सकते।"

ठाकुर को इन बेहूदों पर गुस्सा आ गया। वह कड़ककर बोला—"चुप रहो ! मैं सबको गोली से उड़ा दूँगा। कौन नहीं जायेगा, जरा मेरे सामने सीना तानकर आये। भूरसिंह ! जरा मेरी दुनाली ला। आज ये दो कौड़ी के जट्टू (मूर्ख) धरती के राजा का हुक्म नहीं मान रहे हैं। साले चमार कहीं के।"

"ठाकुर सा !" भींटिया का बाप लाघूराम पूरे जोश में भर उठा, "जबान सम्भालिए। आप हमारे अन्नदाता हैं, इसका मतलब यह नहीं है कि आप हमारे बाप-माँ सेती करने लगे। हमारी मर्जी, हम नहीं जायेंगे। लड़ाई का क्या भरोसा, कब किसके गोली लग जाय और कब कौन मर जाय ? हम अपने बाल-बच्चों को छोड़कर नहीं जा सकते।"

ठाकुर के मन में उसी दम आया कि इस हरामजादे कुत्ते को गोली मार दे लेकिन वह नरेश के सामने अब आतंकवादी बनना नहीं चाहता था। उसने धैर्य से काम लेना ही ठीक समझा। उसने कहा कि जो आदमी हमारा हुक्म मानने को तैयार नहीं है, कल वह अपना खेत व घर छोड़ दें। हम लगान न देने के एवज में सबको कुड़क करेंगे और उधर राजा जी के यहाँ एक आदमी को दौड़ा दिया कि हमारे बीस आदमी तैयार हैं।

रात को उसकी बड़ी बहन ने उसकी घर वाली के सामने भाई से पूछा—"आपने लाघू को गोली क्यों नहीं मारी ?"

"मार देता, लालकुंवर, लेकिन अभी हम लोगो (जागीरदारों) ने राजा जी के खिलाफ जो उपद्रव मचाया था, उसका फल तो आप देख ही चुकी हैं। मैं हुक्मसिंह के कहने पर राजा जी के विरुद्ध नहीं होता तो अब तक राजा जी को राजी करके पाँच-दस गाँव का मालिक और हो जाता है। अच्छा हुआ कि हुक्मसिंह राजाजी की नजर कैद में है। अब जो मैं फौज में भर्ती भेज रहा हूँ, महज इस कारण कि राजा जी के सामने अपना रुतबा जमा रहे हैं और हमारी सेवाओं से प्रसन्न होकर वे हम पर कृपा बनायें रखे।"

लालकुंवर अपने भाई की इस सूझ पर कृत्य-कृत्य हो गई। वह मन-ही-मन विचारने लगी—"यदि भाई सा का रुतबा बढ़ गया तो कहीं-न-कहीं हमारे भी हाथ पीले हो जायेंगे।" पर उसकी छोटी बहिन कृष्ण-कुंवर जो चार ही वर्ष की थी, किंकर्त्तव्य विमूढ़ सी बैठी सबकी बातें सुनती रही।

लालकुंवर के चेहरे की प्रसन्नता को उसकी भौजाई ने पहचान

लिया। जब वह वहाँ से चली गई तब वह ठाकुर सा के पाँवों को दबाती हुई सहमती-सहमती बोली—"अन्नदाता! अब आप लालकुंवर बाई सा के लिए कोई लड़का खोज ही लें।"

"कैसे खोजू, ठाकुराइन? आप नहीं जानती कि बराबर वाले ठिकानेदार कई गाँव तथा कई हजार नकद माँगते हैं; कहाँ से लाया जाय इतना रुपया? यदि मैं किसानों की चमड़ी उधेड़-उधेड़कर बेच भी दूँ, फिर भी अपना काम पार पड़ता नहीं दीखता।"

"लेकिन अब बाई सा एकदम मोट्यार (जवान) दीखती है। जोबन (यौवन) जैसे अंग-अंग से चू रहा है।"

ठाकुर ने तनिक झल्लाकर कहा—"अच्छा, जो होगा सो होता ही रहेगा, जाइये, थोड़ी कुसूम्बो (ठाकुर व राजस्थान के सामन्त अफीम को घोल-घोल बनाने वाले पेय पदार्थ को कुसूम्बा कहते हैं।) भैंरकी के सागे (साथ) भिजवा दीजिये।"

ठकुराइन उठकर चली गई।

ठाकुर ने ठकुराइन को डाँट दिया पर उसका हृदय किसी दुःख से तिलमिलाने लगा। उसके आगे अपनी बड़ी बहिन का चाँद-सा मुख घूमने लगा। गोरी-सलोनी उसकी बहिन अपनी भाभी को देखकर क्या-क्या सोचती होगी? सोचती होगी—"भाई-सा अपना जीवन-सुख लूट रहे हैं और वह यौवन में कुंवारेपन की आग में जल रही है। ऐसा क्यों? केवल इसलिए ही, कि वह गरीब है, उसके पास और ठाकुरों के मुकाबले में अधिक गाँव और अधिक दौलत नहीं है।"

ठाकुर के चेहरे पर पसीना दीये के प्रकाश में शबनम-सी बूँदें सा जान पड़ा। बाकड़ली मूँछों का झुकाव कुछ ढीला-सा लगा। अंग की नस-नस ठंडी होती जान पड़ी। विचारों के तूफान ने जोर का घुमाव खाया—"तो क्या मेरी लाडेसर (लाड़ली) बहिन आजीवन कुंवारी रहेगी?"

इस विचार मात्र से ठाकुर के हृदय में पीड़ा का ज्वार उठा।

पीड़ा का ज्वार भयंकर बनकर आँखों की राह बह चला जैसे वह बहुत दुःखी है।

"जीवन का कितना बड़ा अभिशाप है कि आदमी को केवल अपनी शान के पीछे, रुतबे के कारण अपना सर्वस्व छोड़ना पड़ता है। अपनी बहिन तक को कुंवारी रखना पड़ता है। हे भगवान !"

ठाकुर ने अपने दोनों हाथों को मुँह पर फेरा। दुख की आग में जलकर वह भयानक कल्पना कर उठा, "इससे अच्छा है कि मैं इस गरीब का गला घोंट दूँ। बिना पंख के पछी की तरह तड़पना अच्छा नहीं।" और ठाकुर की मुट्ठियाँ बँध गईं।

× × ×

सवेरा हुआ। सूरज बादलों से निकला ही नहीं था कि गाँव में एक फौज की टुकड़ी आ धमकी। संगीनों से लैस यह टुकड़ी बच्चों के लिए कुतूहल की चीज बन गई। स्त्रियाँ एक आँख दिखाने वाले घूंघट निकाल-निकाल अपने-अपने घर के आगे खड़ी हो गईं। आदमी आतंक से काँप उठे। इसी प्रकार की फौज एक दिन ठाकुर साहब को पकड़ने के लिए भी आई थी? लाधूराम की आँखें खुशी से चमक उठीं। उसने अपने पड़ौसी को लापरवाही से कहा, "हमें युद्ध में भेज रहा था। भाई! अब खुद जायेगा तो छट्ठी का दूध याद आ जायेगा।"

फौज की टुकड़ी के अफसर ने गोली चलाई। औरतों ने बाज की तरह झपटकर अपने बच्चों को अपने आँचलों में छुपा लिया। भयभीत होकर एक-दूसरे को देखने लगी जैसे उनकी आँखें एक दूसरे से पूछ रही हैं कि क्या माजरा है?

फौज सीधी डेरे पर पहुँची जहाँ ठाकुर ने सिर झुकाकर अफसर का अभिवादन किया। अफसर ने हाथ मिलाकर 'डिसमिस' की आवाज की जिससे फौज के सिपाही जो एक कतार में थे, सुस्ताने के लिए इधर-उधर बैठने लगे।

उनके लिये एक-एक गिलास दूध का प्रबन्ध किया गया और इस

कार्य के लिए कुछ गाँव वालों को पकड़ कर उनसे बेगार ली गई खाना बनाने की।

दोपहर तक का खाना बनता रहा। खाना खाने के बाद ठाकुर और अफसर हँसते हुए बाहर निकले। ठाकुर कह रहा था, "हमने आपको राजी कर दिया है और हमारी सेवाओं का फल आप हमें कृपा करके राजा जी से दिलवाइये।"

"क्यों नहीं, मैं आपको वचन देता हूँ।"

ठाकुर के चेहरे पर इस बात से चमक आ गई। लालकुँवर का कुँवारापन उसे मिटता हुआ जान पड़ा। उसे ऐसा महसूस हुआ कि जैसे राजा जी इन बीस जवाँमर्दों की आहुति लेकर उसे ऊँचा ओहदा दे देंगे। कई गाँव बख्श देंगे। तब वह अपनी बहिन का खूब धूमधाम से ब्याह करेगा बरातियों को पाँच-पाँच तोले की बनी अफीम घोल-घोल कर कुसूम्बो बनायेगा और उन्हें पिलाकर गौरवान्वित होगा।

और ठाकुर ने अफसर से वचन ले लिया।

इसके बाद भूरसिंह को बुलाया गया। भूरसिंह हाथ जोड़कर विनीत स्वर में बोला, "हुक्म अन्नदाता।"

"जाओ, उन बीसों को तुरन्त बुला लाओ।"

पलक झपकते वही बीस नौजवान इकट्ठे हो गये। उन सात किसानों ने इस बात का डटकर विरोध किया कि वे कदापि युद्ध में नहीं जायेंगे। उन्हें नकद पैसों तथा खाकी कपड़ों का जरा भी लोभ नहीं है।

इस पर फौज के नालदार जूतों वाले आदमियों ने उन सातों किसानों को घेर लिया और जबरदस्ती सगीनों के बल पर उन्हें चलने को वे बाध्य करने लगे।

उस समय लाधूराम की आँखों में आँसू भर उठे थे। वह चीखकर चिल्लाया था. "ठाकुर सा! जिस प्रकार तू हमें हमारी धरती माँ से अलग कर मौत के मुंह में फेंकता है, उसी तरह भगवान भी तुझे अपनी

करनी का फल देगा।"

झींटिया उस समय चार वर्ष का था। वह अपनी माँ को रोता देख कर खुद जोर-जोर से रोने लगा था लेकिन वह उस समय यह भी नहीं समझा सका था कि वह क्यों रो रहा है? पर आज वह इस क्यों का मतलब समझ गया है कि ठाकुर सा ने उसके बाप को युद्ध में भेजा था जहाँ वह गोली का निशाना बन गया था।

इसके बाद गाँव के साहूकार ने ठाकुर से मिलकर लाधूराम का खेत कुड़क करा लिया। चौधरी ने साहूकार को चेतावनी भी दी थी, "सेठ एक दिन सबको मरना है, उस वक्त परमात्मा के सामने क्या मुंह लेकर जायेगा। इस गरीब बेचारे छोकरे का खेत छीनकर उसे भूखों मत मार।"

पर साहूकार चिकना घड़ा ठहरा। यदि उस पर पानी ठहरे तो चौधरी की बात का असर हो।

चौधरी को गुस्सा आ गया। उसने कहा, "मैं झींटिये और उसकी विधवा माँ को पालंगा, आधी खाऊँगा तो उसे भी आधी खिलाऊँगा और पूरी खाऊँगा तो उसे भी पूरी खिलाऊँगा।"

चौधरी ने अपनी कोमल बाहें फैलाकर झींटिये को अपनी गोद में छुपा लिया। झींटिये की नन्हीं-नन्हीं आँखों से अनायास ही अश्रु छलक पड़े।

इसके बाद झींटिये की माँ का जी बश में नहीं रहा। किसान को अपनी जमीन से कितना प्यार होता है, यह यदि देखना था, तो झींटिये की माँ को देखना था। वह किसान और उसके जमीन से प्रेम की साक्षात प्रतिमूर्ति थी।

काली भयानक रातों में वह झींटिये को अपने आँचल से दूर करके चुपचाप अपने खेत के पास चली जाती। उसकी मिट्टी खोदती, उसे सूंघती, उसे चन्दन की तरह अपने ललाट पर लगाती और फिर बालों को चूमकर सिसक पड़ती थी जैसे यह मिट्टी ही उसके जीवन की सबसे बड़ी निधि हो।

धीरे-धीरे उसे बुखार रहने लगा। बुखार के साथ खाँसी, और

खाँसी के साथ खून, लाल-सुर्ख टमाटर की तरह।

चौधरी झींटिये की माँ को अकसर समझाया करता था, "पाप की जड़ सदा हरी नहीं रहती। ठाकुर ने तुझे सताया है, भगवान उसे सतायेगा। तू जान-बूझकर मौत के मुंह में क्यों जाती है?"

झींटिये की माँ चुप ही रहा करती थी।

एक रात भयानक वर्षा में वह अपने खेत को प्यार करने चली। बूंदें कह उठी, "रुकजा धरती, आज तेरी छाती पर झंझावातों का ऐसा भयंकर प्रहार होगा जो कदाचित् तेरे व्यथित जीवन को नष्ट कर दे। पर धरती अपने खेत के पास पहुँच ही गई।

उसने बड़े स्नेह से अपने खेत की गीली मिट्टी को ललाट पर लगाया। उसे चूमा। बरसात मूसलाधार थी और रात डरावनी।

झींटिया की माँ अपने खेतों की बालों उलझ गई। निर्जीव बालों ने भी अपनी कोमल बाहें उसकी ओर बढ़ा दीं। इतनी ममता से उसने उन्हें अपने आँचल से चिपकाया कि ममता के अश्रु भी छलछला आये। उसकी वेदना पर बूंदें और अधिक जोर से हवा के झोंके का सहारा ले बरस पड़ीं जैसे उसका भी कलेजा फट पड़ा हो। वह विह्वल हो उठी। उसने बालों को अपनी सन्तान समझकर चूमा, एक बार नहीं, अनेक बार। उन्हें सहलाया। आकाश में गड़गड़ाहट के साथ बिजली चमकी। क्षणभर के लिये सारा खेत दीख पड़ा। हठात् उसके मुंह से निकल पड़ा, "यह मेरा खेत है, कितना चोखा और हरा है?"

तब खाँसी की भयानक आवाज आई। दम घुटने लगा। उसने अपने दोनों हाथों से अपना कलेजा पकड़ लिया। उसकी आँखों में आन्तरिक पीड़ा के कारण दारुण व्यथा झलक पड़ी। उसने उस अन्धेरे में सतृष्ण नेत्रों से अपने चारों ओर ढूंढते हुए धीमे स्वर में पुकारा, "झींटिया, अरे ओ झींटिया! देख मेरी पसलियों में बड़ी पीड़ा हो रही है। ओह!" तब उसे जोर की खाँसी आई और खाँसी के साथ ही खून का फव्वारा छूट पड़ा। वह जमीन पर गिर गई। उसने अपनी

मुट्ठी में मिट्टी को भर लिया और जैसे-जैसे मुट्ठी ढीली होती गई वैसे-वैसे उसके मुंह से माँ-माँ का स्वर निकलता गया और वह स्वर क्रमशः टूटता हुआ हमेशा के लिये शान्त हो गया। भींटिये की माँ हमेशा के लिये धरती माँ की गोद में सो गई।

सवेरे ही इस मौत का हल्ला सारें गाँव में फैल गया।

भींटिया अपनी माँ से चिपटकर रो रहा था। चौधरी उसे सांत्वना दे रहा था। उसके बाद ढोलकी ने भी अपने नन्हें-नन्हें हाथों से भींटिये का हाथ पकड़कर कहा, "अब तू मेरे घर पर रहना।" और वह भी भींटिये को रोता देखकर रोने लगी थी।

दूसरे दिन ही ठाकुर के जवान लड़के को साँप ने डस लिया। काफी उपचार के बाद भी वह नहीं बचा। लोगों ने पीठ पीछे कहना शुरू किया, "यह अपनी करनी का फल है, भगवान के यहाँ थोड़ी देर जरूर है पर अन्धेर नहीं। ठाकुर को अपने पाप का फल मिल गया।"

× × ×

काफी समय बीत गया था।

भींटिया अब भी अपने खेत के आगे खड़ा था। एकाएक उसे ढोलकी की बात याद आई कि हम दोनों को जल्दी ही खेत पहुँचना है। आँसू पोंछता हुआ वह चौधरी के खेत की ओर तेज कदम बढ़ाने लगा।

× × ×

अपने जवान बेटे को साँप के काटे जाने के बाद ठाकुर का चित्त विक्षिप्त हो उठा। वह अपने बेटे की लाश पर गिरकर, उससे चिपट कर जोर-जोर से चिंघाड़ पड़ा, "सूरसिंह रे, सूरसिंह। अरे! मुझे काला क्यों नहीं डस गया? अरे! तेरी मौत मुझे ही आ जाती, अरे! मैं मर जाता।' पर लोग सांत्वना के अलावा दे ही क्या सकते थे? उन्होंने उसे बहुत ही धैर्य बँधाया।

इस घटना के बाद ठाकुर के दिल में डर बस गया। वह हर सुबह अपने कारिन्दों एवं ठकुराइन के सामने कहा करता था, "आज रात

लाधूराम मेर कमर में घुस आया था। उसके पाँव उल्टे थे, उसके सिर पर सींग थे। उसके दाँत बड़े-बड़े थे राक्षस जैसे। वह अपने बड़े-बड़े नाखून वाले हाथ बढ़ाकर कहने लगा, "मैं तुम्हें ले जाऊँगा, मैं तुम्हें कच्चा चबा जाऊँगा।...और उसने अपने दोनों हाथों से गला दबोच लिया।" ठाकुर के ललाट पर पसीना चमक उठता था। आँखों में भय की गहरी रेखायें नाच उठती थीं।

लेकिन गाँव के साऊकार मोहनचन्द को यह सुनहरी मौक़ा प्राप्त हुआ। उसने ठाकुर के पागलपन का बहुत ही सुन्दर फायदा उठाया। वह उसकी बड़ी बहिन लालकुंवर से मिला जो स्वभाव की बड़ी तेज व घमण्डी थी।

एक दिन मोहनचन्द ने लालकुँवर को हाथ जोड़कर विनती की, "यदि बाई सा कहें तो कुछ अर्ज करूँ ?"

"क्यों नहीं ?"

"ठाकुर सा की तबियत खराब हो जाने से गाँव की देख-रेख ठीक ढंग से नहीं हो रही है, लगान की वसूली नियम से न होने से किसानों के सिर चढ़ते जा रहे हैं, लाग-बाग भी ढंग से नहीं हो पा रही है, इस तरह काम-काज कैसे चलेगा ?" साऊकार के स्वर में पूरी सहानुभूति थी, "यदि चौधरी ने इस कुप्रबन्ध की खबर नमक-मिर्च लगाकर राजा जी को कर दी, तो ठिकाने का पट्टा ही छिन जायेगा।"

लालकुँवर को साऊकार की बात में सत्यता जान पड़ी। वह गम्भीरतापूर्वक कुछ देर सोचकर बोली, "बात तो पत्ते की है, पर किया क्या जाय !"

भूखे को रोठी मिली। साऊकार फुदक कर बोला, "यदि आप चाहें तो लगान-वसूली का कार्य कर लूँ। आप मुझसे हर साल नियमित रकम ले लिया करें।"

"हाँ, मैं जरा सोचकर उत्तर दूँगी।"

"इसमें सोचने की क्या बात है ? ठिकाने का रुतबा आप सबका

रुतबा है, मैं आपकी इज्जत में चार-चाँद लगा दूँगा और आपको जरा भी कष्ट नहीं होगा। बस, घर बैठे-बिठाये कलदार (नकद) मिलते रहेंगे।

लालकुँवर का मन पाप में पड़ गया। बिना हाथ-पाँव हिलाये माल-पूआ मिलता रहे तो भला कौन नहीं खायेगा ?

और उसने हाँ भर ली।

साऊकार एक माह तक भीगी बिल्ली बना रहा। वह किसानों से बड़े प्यार से बोलता, बड़े ही अच्छे ढंग से सलूक करता, उन्हें अपना सेवक बताता लेकिन फिर उसने अपना गिरगट वाला रंग बदलना शुरू किया। सबसे पहले उसने सभी किसानों को डेरे पर जमा करके लाग-बाग की बातें साफ की।

(१) वर्षा होते ही दो आदमी खेत की जुताई के लिए।

(२) धान पैदा हो जाने पर खेत में घास-फूस की सफाई के लिए दो आदमी देना।

(३) अन्न पक जाने पर चारा और अन्न देना—चौथाई रूप में और लगान अलग से।

(४) ठाकुर के घर वालों, दास-दासियों, और पशुधन के लिए पानी का मुफ्त प्रबन्ध करना।

(५) गाँव का आधा पशुधन गाँव वालों का और आधा ठाकुर का।

(६) हुक्के की लाग पाँच रुपये।

(७) बाई के दूध पीने की कटोरे की लाग पाँच रुपए।

(८) धुएँ की लाग पाँच रुपए।

इस घोषणा से सारे किसानों में हलचल मच गई। सभी लोगों ने मन-ही-मन साऊकार को गालियाँ दी और उसके सर्वनाश की कामना की। चौधरी ने बोलने के लिए जरा जबान खोलनी चाही पर उसे गाँव के कारिन्दों ने डाँट पिला दी। चौधरी का विद्रोह किस शक्ति के भय से भयभीत होकर शान्त हो गया ?

इसके बाद जिस किसी ने जरा भी लगान देने में ढील की, उसका

खेत कुड़क कर लिया गया। अत्याचार पराकाष्ठा को पहुँच रहा था।

इस प्रकार ठाकुर के पागलपन की आड़ में साऊकार गाँव पर जोर-जुल्म करता जा रहा था।

× × ×

सोलह वर्ष बीत गये।

लालकुंवर का यौवन अस्पृश्यता के कारण रूठ गया था। अब वह बेचारी बूढ़ी भी दीखने लगी थी लेकिन उसकी छोटी बहिन कृष्णकुंवर अपने भरपूर यौवन पर थी। प्रकृति भी कितनी नियमबद्ध है?

वह कुछ साल अपनी दूर की बूआ के यहाँ शहर भी रहकर आई थी, जिसने उसे काफी सुशिक्षित और सहृदय बना दिया था, पर वह भी साऊकार के आतंक से पीड़ित थी, डेरे की चहारदीवारी में घुट रही थी। उसकी भावनायें मृगछौने की तरह स्वच्छन्द कुलाँचें भरना चाहती थी पर डेरे की प्राचीरें, झूठी आन और शान उसकी स्वच्छन्द भावनाओं को परतन्त्र करके विवश बना रही थी। उसका अन्तर अपनी ही ज्वाला में दग्ध हो रहा था।

: ४ :

हरखा ने दूध का गिलास मास्टर के हाथ में देते हुए कहा—"मास्टर जी! ठाकुर सा की छोटी कुंवरी सा ने आपको डेरे पर बुलाया है?"

"मुझे, क्यों?" मास्टर की भवें विस्मय से किंचित तन गईं।

हरखा ने इस तरह कहा जैसे कुछ जानती ही नहीं—"मैं क्या जानू? मुझे तो उन्होंने कहा था, वे आपके दर्शन करना चाहती हैं।"

"मेरे दर्शन, हरखा! जाकर उन्हें कह दे, मास्टर के दर्शन करने से

कोई लाभ नहीं, वह न देवता है, और न सिद्ध; किसी मन्दिर में जाकर आप देवता की पूजा कीजिये, वे जरूर आपके मन की साधें पूरी करेंगे।' मास्टर के होठों पर हल्की हँसी थी।

"नहीं, उन्होंने कहा है, कि मेरी ओर से प्रार्थना करके मास्टर जी से कहना कि कृष्णकुंवर आपसे चंद घड़ी बात-चीत करना चाहती है।"

"हुँ! फिर सुन, जब खाना पकाकर जाओ, तो कृष्णकुंवर देवी को कह देना कि मास्टर पाँच-छः बजे के बीच आयेंगे।"

हरखा की आँखों में प्रसन्नता नाच उठी। फिर सँभलती हुई बोली—"मास्टर जी, वह बड़ी ही फूटरी (सुन्दर) है, शहर भी रहकर आई है।"

मास्टर ने बेपरवाही से उत्तर दिया—"तो क्या हुआ, मैं क्या गाँव से आया हूँ ? तू घबरा न, समझी।"

हरखा अपने काम में जुट गई।

इधर कई दिनों से मास्टर की प्रवृत्ति में बड़ा अन्तर आ गया था। छिछले प्रेम की क्षणिक छाया के पीछे न भागकर अब वह गाँव में शिक्षा का नया सूरज उगाने का प्रयास कर रहा था। छोटे-छोटे बच्चे अब पढ़ने में रुचि लेने लगे थे। बड़ों को पढ़ने से चिढ़ थी लेकिन झींटिया इस ओर काफी प्रयत्नशील था। वह मास्टर की सभी कहानी-किस्सों की पुस्तकें पढ़ने लगा था, प्रीत क्या होती है, वह अच्छी तरह समझने लगा था ?

ढोलकी के मन की बात अब उसके हृदय में फूल की सुगन्ध की तरह बस गई थी कि ढोलकी उसे चाहती है, प्रेम करती है। लेकिन अभी भी वह ढोलकी के सामने जान-बूझकर गाँव का भोला-भाल छोकरा ही बना रहता था। वही बच्चों-सा झगड़ा, वही बच्चों-सी नादानी, वही रूठना और वही अजानी-सी प्रीत की बातें ही ढोलकी से किया करता था।

खेत से लौटते हुए झींटिया मास्टर के यहाँ निश्चित रूप से ठहरता था। हरखा उसे अक्सर खाना बनाती हुई मिलती थी। उसके जीवन-

क्रम में जरा भी अन्तर नहीं आया था। बस, काम करना और पेट भरना; पर एक बात थी कि मास्टर के प्रति उसके हृदय में असीम श्रद्धा थी।

आज भी झींटिया खेत से लौटते समय मास्टर के यहाँ आया। उसके चेहरे पर इतनी खुशी थी जितनी खुशी एक राजा को अपने खोये हुए राज्य के मिल जाने पर होती है।

आते ही बोला—"मास्टर जी ! आज साऊकार को लकवा मार गया है, मरने की दशा में पहुँच चुका है, न बोल सकता है, और न उठ सकता है।"

"मर जायेगा, तो जमीन का पाप कुछ कम हो जायगा।"

"जायेगा नहीं।" झींटिया ने निश्चयात्मक स्वर में कहा—"इसने गाँव वालों का खून चूस-चूसकर अपना पेट फुलाया है, अब की पेट फूट कर ही रहेगा।" उसके स्वर में क्रमशः आक्रोश उत्पन्न होता गया।

इतने में हरखा भी आ गई। वह बात में हिस्सा लेने लगी।

"साऊकार मर जायेगा तो गाँव का कल्याण हो जायेगा।"

मास्टर ने हँसकर कहा, "लो, यह भी उसके कल्याण की कामना करने लगी। भाई ! जब सभी ही उसके चिरायु की प्रार्थना करने लगे हैं, तब बेचारा रात भर ही निकाल दे, तो बहुत है !"

"मास्टर जी ! मैं पहले चौधरी काका को यह खबर दे आऊँ। आज सवेरे ही वे ठाकुर सा की बेगार में गये थे, इसलिये उन्होंने तड़के ही अपना खेत छोड़ दिया था। कितना अन्याय है, मास्टर जी कि अपने खेत का आधा काम छोड़कर भी हमें बेगार में जाना पड़ता है ?"

"इस बार मैं शहर जाऊँगा तो वहाँ की संस्था 'प्रजा परिषद' को इस जुल्म की सूचना दूँगा।"

"अब देने की जरूरत नहीं पड़ेगी। साऊकार तो सवेरे तक मसान घाट पहुँच ही जायेगा, फिर कौन लगान-बगन लेने आयेगा।" हरखा ने अपनी बुद्धिमानी का परिचय दिया।

मास्टर गम्भीर हो उठा, "हरखा ! तू बड़ी नादान है। एक राजा मरने के बाद क्या दूसरा राजा नहीं आता ? एक साऊकार मरेगा तो दस कारिन्दे या ठाकुर के चट्टे-बट्टे तैयार हो जायेंगे। अभी अकेले साऊकार की आज्ञा माननी पड़ती है, बाद में दस की माननी पड़ेगी। अन्याय और अत्याचार इस तरह खत्म नहीं होता। उसको खत्म करने के लिए हमें उसकी खिलाफत करनी होगी। उसका मुकाबिला संगठन के साथ करना होगा। एक लड़ाई लड़नी पड़ेगी।"

"लड़ाई।"

"हाँ।"

"हम कैसे लड़ सकते हैं ?"

"झींटिया, इस बार मैं तुम्हें शहर ले जाऊँगा। अब तुम अच्छे-खासे होशियार हो गये हो। केवल तुम्हें शहर की हवा और अच्छे नेताओं के साथ रहने की जरूरत है। बोलो, शहर चलोगे ?"

"हाँ।" झींटिया दृढ़ता से बोला। उसका मन शहर देखने को लालायित हो उठा।

मास्टर उठकर चोला पहनने लगा। वह प्रायः सफेद रंग का चोला ही पहना करता था। उसके नीचे धोती होती थी।

बाहर हरखा उसकी जूती कपड़े से साफ कर रही थी। झींटिया हवा की भाँति घर से बाहर निकल गया था। मास्टर कुछ दूर तक उसका साथ करना चाहता था लेकिन झींटिया-तो-झींटिया ही था; जहाँ पलक झपकी कि भूत की तरह गायब।

बाहर निकलते ही मास्टर की नजर हरखा पर पड़ी। वह तन्मय होकर मास्टर की जूती साफ कर रही थी। मास्टर का हृदय स्नेह से भर उठा। सरलता से पूछ बैठा, "हरखा, जूते साफ मत किया कर।"

"क्यूँ, मास्टर जी ?"

"यह ठीक नहीं रहता, अपने आपको इतना नीचा नहीं गिराना

चाहिए कि तेरी नौकरी-नौकरी न रहकर एक दया बन जाय।"

हरखा जूतों को मास्टर के पाँवों के आगे रखती हुई धैर्य से बोली, "मास्टर जी ! मुझे आपके काम-काज करने में बड़ा आनन्द आता है, इच्छा होती है कि आपकी सेवा में चौसठ घड़ी (चौबीसों घंटों) लगी रहूँ।" उसके शब्दों में अपार श्रद्धा उमड़ रही थी।

"इतनी सेवा अच्छी नहीं है। तेरा तो कुछ बिगड़ेगा नहीं, मेरे हाँड हराम हो जायेंगे और जब तू नहीं रहेगी तब बता मुझे कितना कष्ट होगा ?" स्वर की कोमलता ने मास्टर के चेहरे पर स्निग्धता पैदा कर दी। दृष्टि स्थिर होकर हरखा के चेहरे पर जम गई।

हरखा हठात् बोल उठी—"मैं आपके साथ क्यों नहीं रहूँगी, क्या आप मुझे शहर नहीं ले जायेंगे ?"

मास्टर का चेहरा गंभीर हो गया। आँखों में गहरी वेदना झलक उठी—"नहीं हरखा।"

हरखा का मुँह उतर गया। अपने हाथ की अँगुली में अपने आँचल का पल्लू लपेटती हुई निराश भरे स्वर में पूछ बैठी—"क्यूँ मास्टर जी, क्या मैं बुरी हूँ ?"

'बुरी नहीं, हरखा, तू बहुत अच्छी है।" मास्टर के सीने पर बोझ सा आने लगा। उसकी गर्दन अन्तर्वेदना के कारण लज्जित होकर झुक गई।

"फिर आप मुझे अपने संग शहर क्यों नहीं ले चलते ? मास्टरजी ! मैंने शहर कभी नहीं देखा है।" उसने अपने उठते हुये हृदय के भावों का जबरदस्ती शोषण कर जिज्ञासा प्रकट की।

"यह बात नहीं है, हरखा ?"

"फिर ?" हरखा की दो भोली-भाली निगाहें मास्टर के चेहरे पर जम गईं।

"क्योंकि तू बाल-विधवा है। शहर वाले तुझे मेरे संग देखेंगे तो बहुत ही नीच बातें सोचेंगे। शायद तू उन बातों को सुन-सुनकर पागल

हो जायगी ?"

जैसे एक बादल का टुकड़ा सुन्दर चाँद पर छाकर सृष्टि के सौंदर्य को समाप्त कर देता है, ठीक उसी तरह दुःख का एक अदृश्य आवरण हरखा के चेहरे पर छाकर उसे काला-स्याह कर गया। वह मास्टर की आँखों से आँखें मिलाती रही। मास्टर की आँखों में पानी सा आया। हरखा की आँखें बह उठीं। उसने झपटकर मास्टर के पाँव पकड़ लिए, "मुझे माफ कर दीजिये मास्टर जी, मैं भूल गई थी कि मैं क्या हूँ ?"

"तू तू हरखा इस जीवन की पीड़ा है, दया है, जलन है। तेरी आत्मा को जो जरा भी कष्ट पहुँचायेगा, उसे कभी शाँति नहीं मिलेगी। उठ पगली, मेरे पाँवों को छोड़ दे।" मास्टर का अन्तःकरण हाहाकार कर उठा। फिर धीरे-धीरे मास्टर के बोझिल पाँव आगे बढ़ गये।

हरखा की सिसकियाँ मास्टर के कानों में दूर तक आती रहीं। वे सिसकियाँ जिनमें अगाध ममता का उमड़ता हुआ सैलाब था।

मास्टर का मस्तिष्क भारी हो उठा। उसकी आँखों के आगे वही सपने वाला दैत्य अपनी विकराल बाहें फैलाकर खड़ा हो गया। वह क्या करे ? किस प्रकार इन नादानों को समझायें कि हरखा के साथ अन्याय मत करो। इसे बेचारी के हाथ पीले कर दो। नहीं तो, कभी दुःख में पागल होकर यह किसी कूएँ में कूद पड़ेगी या रस्सी का फंदा बनाकर मौत का झूला झूल जायेगी।"

ठाकुर का डेरा आ चुका था। मास्टर अपने आपको संभाल करके द्वार की ओर बढ़ा। एक गोली उसकी पहले से ही प्रतीक्षा कर रही थी। वह सीधी उसे कृष्णकुंवर के कमरे में ले गई। कमरे में ले जाने के पहले उसे लालकुंवर से आज्ञा लेनी पड़ी थी।

डेरा लाल पत्थरों का बना था। कहीं-कहीं बड़ी ईंटों से भी काम लिया गया था। डेरे के चारों ओर बहुत दूर तक काँटों का बाड़ थी।

कृष्णकुंवर का कमरा काफी साफ-सुथरा था। उसमें काच के बड़े-बड़े झाड़-फानूस थे और बड़ी-बड़ी तस्वीरें थीं। दोनों ओर दो बड़े-बड़े

आदमकद शीशे थे, उसमें कृष्णकुंवर के सोने का पूरा चित्र दिखलाई पड़ता था। नीचे, नगर की जेल का बना गलीचा था और पलंग पर मखमली गद्दा। पलंग के समीप ही एक आराम कुर्सी थी जिस पर मास्टर के बैठने का बदोबस्त किया गया था। कृष्णकुंवर ने मास्टर के आगमन पर साफ सुथरी केसरिया साड़ी पहन रखी थी। केसरिया साड़ी के नीचे लाल रंग का लहँगा बड़ा ही प्रिय लग रहा था। उसकी काँचली का रंग भी केसरिया ही था और उन सबकी सुन्दरता गुलाब के फूल की तरह खिला रहा था—कृष्णकुंवर का केसरिया रंग।

मास्टर ने जैसे ही कमरे में प्रवेश किया वैसे ही कृष्णा ने नम्रता से हाथ जोड़कर नमस्कार किया। मास्टर ने भी नमस्कार का उत्तर उसी विनम्रता से दिया। कुर्सी पर बैठते ही मास्टर की नजर मनका पर पड़ी। वह यंत्रवत् लकड़ी के पंखे को खींच रही थी तो छत से टंगा हुआ था।

मास्टर ने मनका के बारे में पूछा तो कृष्णा ने बड़े ही सकोच से बताया कि यह उसकी गोली है। बचपन में जब वह बहुत ही गर्म मिजाज की थी, तो इसको दो-तीन बार इतने जोर से पीटा कि अब पखा एक पल के लिये भी बन्द नहीं होता।

मास्टर ने देखा कि कृष्णा की आँखें सहज माननीय लज्जा से जमीन में धँसती जा रही हैं। उसे अपने अतीत के प्रति लज्जा है। उसने बात को खुलासा करते हुए बताया—"मैं बहुत उद्दंड थी। बात-बात में ताव में आ जाती थी। इनके साथ ऐसा ही व्यवहार-बर्ताव किया करती थी,जैसा हमारी माँ-दादी करती थी।" उसने एक लम्बी आह छोड़ी, "फिर जब मैं शहर गई तो मनुष्यता क्या होती है, यह जाना ? लेकिन अब मनका पर मेरे कहने का कोई असर नहीं होता। इसे आज भी मुझसे उतना ही डर लगता है जितना पहले लगता था।। यह मुझे उतना ही कठोर समझती है, जितनी कठोर मैं पहले थी। मेरे आँख बदलने के साथ यह रोने लगती है। बिल्कुल बूद्धू और दब्बू है।"

मास्टर की दया मनका पर जाग उठी।

वह रूखी हँसी हँसता हुआ बोला—"सदा की सजा और आपकी दुष्टता ने इस बेचारी के अचेतन मन में भय की सृष्टि कर दी। अब यह आदमी से यन्त्र बन गई।"

कृष्णा को यह बुरा जरूर लगा, लेकिन तत्काल वह सहिष्णु रही। उसने जो गलतियाँ की है, उसका यही प्रायश्चित है कि वह चुप रहे, अपनी गलती को महसूस करें। झूठी आन के मद में उसकी बड़ी बहिन का आजीवन कुंवारा रह जाना, उसके लिए कितना मार्मिक पीड़ादायक था ? शिक्षा के साथ-साथ उसके विवेक ने विकास का जो रास्ता अपनाया, उसमें उस अहम् का स्थान मिट रहा था जो मनुष्य को भीतर-ही-भीतर क्षय रोग की तरह खोखला कर देता है।

कृष्णा ने धरती पर अपनी नजरें गाड़ दीं, "मैं मानती हूँ, कि हमारी दुष्टता ने ही इस बेचारी को इतना डरपोक बना दिया है।" वह रुककर बोली—"असल में बात यह है कि मनुष्य अपनी रूढ़ियों को जल्दी से छोड़ नहीं सकता। उस पर रूढ़ियाँ शासन करती हैं। जिस वातावरण में मेरा पालन-पोषण हुआ, जो मैंने अपनी आँखों से देखा, उसके संस्कार मेरी खोपड़ी में घर करते गए और मैं वैसी ही बनती गई, जसी मेरी माँ या अन्य घरवालियाँ थीं।"

"आदमी की क्रूरता एवं पशुता का नंगा रूप कदाचित् इन्हीं सत्ताधारियों के रावले में पाया जाता है ?" मास्टर के स्वर में स्पष्ट आक्षेप था।

"मैं भी मानती हूँ, लेकिन मैं अपनी दया का खुलकर उपयोग भी नहीं कर सकती। ऐसा करती हूँ तो एक गृह-दाह लग जाती है। उस गृह-दाह में मैं अपनी मानसिक शाँन्ति खो बैठती हूँ। इसलिए मुझे अपनी मानसिक शांति को बनाये रखने के लिए थोड़ा-बहुत दुष्ट बनना ही पड़ता है ताकि मेरे घर वाले यह समझे कि मैं पूर्वजों की परम्परा का परित्याग नहीं कर रही हूँ।"

मास्टर को कृष्णा की बातों से कुछ सन्तोष प्राप्त हुआ। उसे मह-

सूस हुआ कि इस युवती में जीवन के प्रति सही ढंग से सोचने की शक्ति है। कई बातें हुईं। मास्टर ने भिन्न-भिन्न प्रश्न किये जिनका उत्तर कृष्णा ने बड़े ही सुन्दर ढंग से दिया। मास्टर प्रसन्न हो गया।

इस गाँव में मास्टर को एक यही ऐसी युवती मिली जिससे वह गम्भीरता पूर्वक किसी भी समस्या पर विचार-विवेचन कर सकता था। उसकी दृष्टि कृष्णा के चेहरे पर कुछ देर तक रुकी रही। फिर वह तैयार होता हुआ बोला—"शहरों में जो जन-जागृति हो रही है, उसके बारे में आपका क्या ख्याल है ?"

कृष्णा इस पर चुप हो गई। उसकी मुद्रा से ऐसा प्रतीत होता था जैसे उसे इसके बारे में बहुत ही कम ज्ञान है। उसने अपनी गर्दन नीची कर ली, "दरअसल मास्टर जी, मुझे इन गम्भीर समस्याओं का अध्ययन जरा भी नहीं है। लेकिन सन् ३२ के उस आन्दोलन के समय मैं बीकानेर में थी। मैं यह कह सकती हूँ कि राज-द्रोहियों ने राज्य के विरुद्ध कुछ किया जरूर था अन्यथा महाराजाधिराज इतने कठोर नहीं होते ?"

मास्टर कृष्णा के गलत कथन पर तुरन्त आवेश में आ गया, "आप भी ऐसी बातें करती हैं जैसी छोटी-सी बच्ची, केवल जनता में चेतना भरने के लिए चन्द पर्चे वितरण कर देने से ही राजद्रोह जैसा संगीन जुर्म बन सकता है तो और बात है। जरा गौर कीजिये, चूरू में स्वामी गोपालदास जी द्वारा जो जागृति करने के हेतु दिया गया भाषण क्या राजद्रोह का जाना पहन सकता है ? किसी अखबार में समाचार भेज देना भी क्या राजद्रोह का अपराध हो सकता है ? नहीं, तो उस शहर के राजाओं की निरंकुशता पौराणिक दैत्यों से कम नहीं हो सकती।" क्रोध की रेखायें मास्टर के चेहरे पर नाच उठीं। जब उसका क्रोध शांत हुआ तो कृष्णा ने मास्टर के चेहरे पर आलौकिक आभा के दर्शन किये। वह श्रद्धा से मन-ही-मन झुक गई, अवश्य ही यह मानव कोई महामानव है।"

"मास्टर जी, तो राजाओं का भविष्य क्या है ?" उसने नया प्रश्न किया।

"जन जागृति के साथ यदि ये नहीं बदले तो एक दिन धरती पर से राजा नाम का कोई जानवर रहेगा ही नहीं।"

कृष्णा को मास्टर के शब्दों में सत्य का भास हुआ। उसने बात को बदला, "आजकल झींटिया कहाँ रहता है ?"

"चौधरी के यहाँ !"

"क्या करता है ?"

"खेत का काम, और मेरे पास पढ़ता है। अब मैं जल्दी ही यह गाँव छोड़कर चला जाऊँगा। मेरे साथ झींटिया भी चलेगा। उसे शहर देखने का बड़ा शौक है।"

"आप गाँव छोड़कर चले जायेंगे, क्यों मास्टर जी ?"

"शहर में जाकर कुछ काम करूँगा। सच यह है, कृष्णा जी कि मेरे पीछे कोई रोने-धोने वाला नहीं है। अतः अपने जीवन को क्यों व्यर्थ खत्म होने दूँ ? शहर में जाकर प्रजा-परिषद में काम करूँगा। हाँ, इस गाँव में आने का भी एक कारण था, कुछ दिन रहकर सेहत ठीक करनी थी।"

"लेकिन मैं कहती हूँ कि मत जाइये।" उसके स्वर में आग्रह था, "और आप जायें तो झींटिये को साथ मत ले जाइये ?"

"इसमें एक नौजवान का भरपूर जोश है, तेज बुद्धि है शहर चला चलेगा तो आदमी बन जायेगा।"

कृष्णा क्यों उदास हो गई, यह मास्टर नहीं जान सका। वह रुकती-रुकती बोली, "यह झींटिया है न, बड़ा ही उद्दड है। जब मैं छोटी थकी (बच्ची सी) थी। तब एक बार मैं घोड़े पर चढ़कर गाँव के खेतों में घूम रही थी। रास्ते में झींटिया महाराज सोए मिल गये। मैंने गुस्से में एक हन्टर उसके सिर पर मार दिया। उसने भी आव देखा न ताव, पास पड़े एक कंकर को उठाकर मेरे सिर पर दे मारा। मेरे ललाट पर एक गूमड़ा

(सूजन) हो गया। मेरे रोम-रोम में आग-सी लग गई। पर न जाने मैंने क्यों नहीं अपने घर उसकी शिकायत की ? उस दिन के बाद मैं हमेशा भींटिये से डरती थी। पर भींटिया मुझसे कभी भी सीधे मुँह बात नहीं करता था। मैं उसे मनाती थी, हाथ जोड़ती थी लेकिन वह घृणा से इतना ही कहा करता था कि मैं तुझसे नहीं बोलूँगा, तेरे बाप ने मेरी माँ को मारा, मेरे बाप को मारा, बड़ा होकर मैं भी तेरे माँ-बाप को मारूँगा। बड़ा विद्रोही है मास्टर जी ? अब कैसा है ?"

मास्टर कृष्णा की आँखों की उत्सुकता को तुरन्त भाँप गया। वह मुस्कराता हुआ बोला, "है तो वैसा ही जोशीला, फर्क इतना है कि पहले के जोश में बचपन था और अभी के जोश में ज्ञान। अच्छा, अब मैं चला।"

"दूध का गिलास मंगवाऊँ ?"

"नहीं ?"

"क्यों, मास्टर जी ?"

"इच्छा नहीं है।"

"आपको देखने की बड़ी मनसा (इच्छा) थी।"

"अब तो पूरी हो गई, मेरे ख्याल में अब तो आपका उद्धार हो ही जायेगा।"

दोनों हँस पड़े।

मास्टर के चले जाने के बाद कृष्णा के आगे भींटिया का चेहरा बहुत देर तक घूमता रहा।

: ५ :

साँझ का सूरज क्षितिज का चुम्बन लेता हुआ अस्त हो चुका था। एक मटमैली चादर सारे गाँव पर छा चुकी थी। घरों का उठता हुआ धुआँ गाँव के वातावरण को घुटा रहा था।

ढोलकी आज बड़ी आकुलता से झींटिया की प्रतीक्षा कर रही थी। गायों को दाना-पानी देने से लेकर दूहने तक का काम उसने अकेले ही समाप्त कर लिया था ताकि वह झींटिया के आते ही निश्चिन्त होकर बात-चीत करे। वह उसकी झोंपड़ी के आगे बिछी सूखी घास पर लेट गई। उसके मुँह में घास के दो-तीन तिनके थे।

लेकिन झींटिया आज गम्भीर था। मास्टर के साथ शहर जाने की उसने जो उत्सुकता प्रकट की थी और जल्दबाजी के कारण उसने जो 'हाँ' भर ली थी उससे वह चिन्तित हो उठा। इस गाँव की मिट्टी में झींटिया का बचपन, उसकी मधुर यादें, उसकी उद्दंडता तथा उसका प्रेम छिपा हुआ था। इस गाँव की हवा में झींटिया का स्वाभिमान एवं अकड़ गूँजा करती थी, तभी उसने कभी भी कृष्णा से सीधे मुंह बात तक नहीं की।

स्मृति जैसे झींटिया के हृदय-पटल पर चित्रपट की तरह पूरे प्रकाश के साथ घूम गई। एक बार कृष्णा ने शहद से मीठे स्वर में कहा था, "झींटिया! तू मुझे बहुत ही चोखा लगता है।" झींटिया का दुखित हृदय तड़प उठा, "तू मुझे आँख-डीठी भी (आँख को भी) नहीं सुहाती है।"

"फिर तुझे कौन चोखी लगती है?"

"ढोलकी।"

"मैं ठाकुर की बेटी हूँ झींटिया, मुझसे अकड़ेगा तो मैं अपने आद-मियों से तेरी खाल खिंचवा लूंगी।"

"राँड से बड़ी कोई गाल नहीं है। जा, खाल खिंचवा दे यदि तुझमें दम है तो ?' और झींटिया अकड़कर चलता बना।

पर झींटिया अवसर देखा करता था कि कृष्णा कभी भी उसकी शिकायत नहीं करती है। न जाने क्यों ?

पर झींटिया आज समझ रहा है कि कृष्णा की वह लाचारी उसके बनावटी जीवन की वास्तविकता थी। घुटते हुए विषाक्त सामन्ती-जीवन की वह स्नेह-सिंचित ज्योति थी, जहाँ जीवन सच्चा रूप लेकर जलता है।

उसने अपने घर में पाँव रखा। चारों ओर देखा,—'ढोलकी, अरी ओ ढोलकी !"

ढोलकी बहुत देर से उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। झींटिया की आवाज सुनते ही वह उसकी ओर भागी। उसके भागने की गति ने स्पष्ट मालूम होता था कि वह झींटिया के प्रगाढ़ आलिंगन में आबद्ध हो जायगी, पर वह उसके सामने जाकर एकदम ठिठक गई, जैसे किसी ने तेज भागती हुई गाड़ी के ब्रेक लगा दिये हों। झींटिया असमंजस में पड़ गया। देखता क्या है कि ढोलकी ने घूंघट निकाल लिया है।

खुशी और आश्चर्य-मिश्रित जो मुस्कान झींटिया के अधरों पर नाची, वह सहज मानवीय हृदय से ओत-प्रोत थी। वह उसका हाथ पकड़ बैठा, "क्या बात है, ढोलकी, अरे तू बोलती क्यों नहीं ?"

ढोलकी ने अपना घूंघट और खींच लिया।

"अरे ! हो क्या गया है तुझे ?"

"............।" वह चुप रही।

"अच्छा, तू नहीं बोलती है, तो, ले मैं चला।" झींटिया वापस द्वार की ओर मुड़ा।

अब ढोलकी से रहा न गया। उचककर उसने झींटिया का हाथ पकड़ा लिया, "कहाँ जाता है ?" ढोलकी का घूंघट हट गया।

"खेत।"

"क्यूं ?"

"तू गज भर का घूँटा निकाल कर बैठ गई है, फिर मैं किससे बातें करके अपना वक्त बिताऊँगा ?"

"अब ?" चाँद फिर बादलों में छिपने लगा।

"अब कौन से तेरे हीरे-मोती लग गये हैं ?" झींटिया के स्वर में उपहास था।

"काका तेरी और मेरी···।" वह खिलखिलाकर हँसती हुई घर के भीतर अदृश्य हो गई।

झींटिया घर में घुसा।

खाना परोसते हुए चौधरी ने आत्मीयता से कहा, "बेटा ! मैंने ठाना है कि तेरा और ढोलकी का ब्याह अगले बैशाख के सावे (मुहूर्त) में कर दूं।"

झींटिया बिल्कुल चुप रहा।

"तू जानता है कि बेटी राजा रावण के घर में भी नहीं टिकी, फिर भला हम लोगों की क्या बिसात है ? फिर मेरे तो कोई दूसरा छोरा है नहीं, इस वास्ते मैं तो बेटी देकर बेटा लूंगा।" चौधरी का स्वर आर्द्र हो उठा, "बेटा ! ढोलकी के लिए तुझसे चोखा कौन बर होगा ? दोनों की जुगल-जोड़ी राधा-किशन की-सी लगेगी।"

झींटिया की आँखों में चौधरी के बड़े-बड़े अहसान आँसू बन कर गालों पर चमक उठे। यह व्यक्ति है या देवता, वह नहीं समझ सका।

'झींटू, तू रोता क्यों है ?"

"रोता नहीं, शर्माता है।" पहली बार झींटिया ने ढोलकी की माँ के स्वर में प्रेम देखा।

"काका ! तेरे अहसान से तो मैं मरा जा रहा हूँ, इस पर ··।"

"नहीं झींटू, मैं तो ढोलकी का सुख खोज रहा हूँ। वह सुख तेरे कन्ने रहने से ही होगा।"

झींटिया ने भावुकतावश चौधरी के पाँव पकड़ लिए, "आप मिनख

नहीं हैं, देवता हैं, देवता।"

बाद में झींटिया के लिए एक भी निवाला उगलना कठिन हो गया। वह उठा, "काका! मैं अगले सप्ताह शहर जा रहा हूँ।"

"किसके संग?"

"मास्टर जी के।"

"जरूर जाओ, इसकी संगत से आदमी बन जाओगे। तुझे नहीं मालूम, काले कन्ने गोरा बैठा, रंग नहीं बदले तो अकल जरूर आजावे।"

झींटिया हँस पड़ा।

झोंपड़ी के आगे ढोलकी खड़ी थी। झींटिया को देखते ही पीछे की ओर छिप गई। झींटिया एक बार फिर मुस्करा पड़ा।

: ६ :

लालकुंवर की क्रूरता हद से बाहर होती जा रही थी। अपने जीवन की अतृप्ति से पीड़ित वह नारी अपने जीवन-उद्देश्य को मानवीय परम्परा से विमुख करके एक क्रूर शासक का रूप दे रही थी। गोले-गोलियों पर नंगा अत्याचार, किसानों का साहूकार के साजे में भीषण शोषण। कृष्णा पर बेजा आधिपत्य की भावना, उस पर प्रतिबन्ध का ताना-बाना। जैसे वह चाहती थी कि उसकी आज्ञा के बिना यहाँ का पत्ता भी न हिले।

अपने जीवन के अभावों की भयंकर प्रतिक्रियायें और उसके मन के हीन भाव, लालकुंवर के उपेक्षित और अतृप्त जीवन में काले साँपों के दर्शन-सी तड़प पैदा करते थे। वह कभी-कभी उन्माद की अवस्था में आकर यहाँ तक सोच लेती थी कि गाँव के जितने भी सुखी दम्पति हैं, उनके जीवन में द्वेषता, घृणा और मन-मुटाव की दरारें डाल दूं। यही

कारण था कि उसने अपने एक गोले के प्रेम का अन्त इतने लोभ-हर्षक ढंग से किया कि फिर कभी किसी भी गोले और गोलियों ने प्रेम के विचार को मन में लाना ही छोड़ दिया। न मालूम वह किसी जोड़े को हँसते-खेलते देखकर क्यों विचलित हो जाती थी ? उसके हृदय में घृणा की हिंस्त्र-भावना क्यों उत्पन्न हो जाती थी ? अपने गोले की प्रेयसी को चोर साबित कर और उसे जेल भिजवा कर उसने असीम आनन्द का अनुभव किया था और गोले को दिन भर तपती धूप में रेत पर खड़ा करके उसने एक दानवी-शांति का अहसास किया था। जब गोला पानी-पानी करता अचेत हो गया तब उसने पानी पिलाकर उसे चैतन्य किया और फिर उसने उसको इतनी क्रूरता से पीटा कि वह पुनः अचेत हो गया। दूसरी बार होश आते ही उसने लालकुँवर के दोनों पाँव मजबूती से पकड़कर क्षमा माँगी कि वह कभी भी प्यार के फँदे में नहीं पड़ेगा।

तब लालकुँवर ने उसे क्षमा कर दिया।

कृष्णा पर अपने बड़प्पन का रुतबा वह हर समय दिखाया करती थी। वह नहीं चाहती थी कि कृष्णा मुस्कराये, स्वच्छन्द पंछी की तरह उड़े, अपने जीवन की शुष्क-बंजर भूमि पर गुलाब और मेंहदी के पेड़ उगाये। यदि वह ऐसा करती है तो उस पर दुर्भाग्य का गहरा कलंक लग जाता है। तब यह बात हर आदमी निःसंकोच कहने लग जायगा कि लालकुँवर के कर्म अच्छे नहीं थे, इसलिए वह कुँवारी रही देखो, कृष्णाकुँवर कितना चोखा घर-वर पाया है।

यही वजह थी कि लालकुँवर ऊपर से कृष्णा पर प्रेम की बरखा किया करती थी, उसकी उन्नति को मर्यादा के बाहर की गति बताकर रोक दिया करती थी लेकिन उसका अचेतन मन कृष्णा से एक गहरा द्वेष रखता था जैसा द्वेष एक नमकहराम मंत्री अपने राजा से रखता है।

आज की मास्टर की घटना को लेकर लालकुँवर ने कृष्णा को जलती हुई आँखों से देखकर डाँटा, "हमारे पूर्वजों की परम्परा पर-पुरुषों

के साथ बात करने का अख्तियार उतनी ही देर का देती हैं जितना कि जेल में आये चोर को अपने घर वालों से। लेकिन मैंने अपने कानों से सुना कि तुम अमर्यादित बातें करके मास्टर पर अपने रूप का सम्मोहन डाल रही थी। तुम्हारी बातों में टपकता हुआ प्रेम-रस हमारे मान के लिए जहर सिद्ध हो सकता है, इसलिए अब मास्टर का यहाँ पर आना-जाना मना किया जाता है।"

कृष्णा खून के घूंट पीकर रह गई। उसने तय कर लिया कि वह शीघ्र ही इस गाँव से भाग जायेगी।

अपने कमरे में आकर वह रोने लगी। उसने विह्वल होकर रुद्ध स्वर में कहा, "काश वह इस वंश में नही जन्मती।"

बड़ी ठकुराइन ने आकर उसे धैर्य दिया। कहा, "ठाकुर सा के गैले हो जाने के बाद हमारा कोई भी रखवाला नहीं रहा, फिर भी प्रभु अच्छा ही करेगा।" इतना कह ठकुराइन चली गई पर उसकी आँखों के सामने अब भी कृष्णाकुँवर का सुडौल गोराचिट्ट चेहरा नाच रहा था। बीस के लगभग उम्र हो गई थी कृष्णकुँवर की। चार साल से विवाह की बात चल रही है, पर दहेज दीवार बनकर उसके गठ-बन्धन के बीच आ जाता था। वह चन्दा-सी गोरी नार जैसे बिना पानी के शाख की भाँति सूखने लगी थी।

ठकुराइन सोचा करती थी कि इस उम्र का कुँवारापन स्त्रियों की नींद हर लेता है, उनको सूखाकर काँटा बना देता है। जैसे लालकुँवर बाई सा को बना दिया है। अब बेचारी कृष्णकुँवर? वह तनिक रुक-कर यह बोली, "बड़े खोटे भाग्य लेकर जन्मी है। न चोखा वर और न चोखा घर और यदि ये दोनो मिल जाते हैं तो ज़र के अभाव में काम नहीं बनता था। अब भगवान ही रखवाला है।"

गर्मी से बचने के लिए कपड़े और लकड़ी का बना पंखा अब भी चल रहा था और सारी रात मनका गोली उसे चलाती ही रहेगी।

मनका यंत्रवत पंखा चला रही थी हालाँकि कृष्णा उस समय कमरे

से बाहर निकल चुकी थी; पर उसके मन में जो भय बैठा हुआ था कि इस पंखे के पीछे उसने तीन-चार बार हड्डियाँ तुड़वाई थीं। इसके बाद उसके दिमाग में भय की घोर प्रतिक्रिया हुई और वह उस पंखे को देखकर बावली-सी हो उठती थी। उसका रुकना जैसे उसकी मौत का न्योता था, इसलिए वह उसे लगातार चलाती ही रहती थी।

कृष्णकुँवर ने पुन: कमरे में पाँव रखते ही मनका को आज्ञा दी, "आज हम ऊपर वाली मैड़ी की छत पर सोयेंगे, आज हमारी तबियत अमूज (ऊब) रही है।"

मनका ने इतना उत्तर दिया, "हुक्म बाई सा !"

बाद में वह मोचा, बिस्तरा, जल की झारी आदि लेकर ऊपर चल पड़ी।

कृष्णकुँवर बिस्तरे पर सोई थी कि गाँव की कुछ लड़कियों ने अपने शहद से मीठे स्वर में तीज का गीत शुरू किया।

सावन का उन्माद भरा महीना लग चुका था।

थोड़ी-थोड़ी वर्षा के कारण प्रकृति-सुरम्य लगने लगी थी। धरती की छाती को चीरती जो भुरूट फूटीं उससे वह हरी-भरी लगने लगी थी। खेजड़ों का चाँदनी के प्रकाश में झूमना मन को मोह रहा था।

कृष्णकुँवर की आँखें सारी प्रकृति पर होती हुई चाँद पर टिक गईं। आज चाँद में उसे कलंक जान पड़ा। लेकिन उसे उसी चाँद के पास एक नया चाँद दिखा। यह चाँद झींटिया का चेहरा था, प्यारा, तब उसकी ध्यानमग्नता खेतों की बाड़ से टकराकर गूँजते हुए गीत में जा मिली।

गीत में एक नवजवान बहू अपने परदेश जाते हुए पति को तीज खेलने के लिए प्रश्न कर रही है :

[1]बागों बोली कोयली, आभे चमके बीज,

---

१ बाग में कोयल बोल रही है और आकाश में बिजली चमक रही है यदि आप नौकरी करने (परदेश) चले जायेंगे तो हमें तीज कौन खेलायेगा ?

आप सिधासों चाकरी, म्हांने कूण रमासी तीज ।

कृष्णकुँवर के कानों में पूरे दोहे का रस पड़ते ही उसने अपने नेत्र मूंद लिए । उसकी आँखों के सामने एक षोड़शी नई दुल्हिन का चेहरा नाच उठा जो अपने परदेश जाते हुए पति को मना रही है ।

कृष्णकुँवर भावों के उद्रेक में इतनी बह गई कि उसने अपने दोनों हाथों को अपनी छाती पर रख लिया और हौले-हौले काँपने-सी लगी ।

मनका चित्रवत् खड़ी थी । कृष्णकुँवर को विचित्र मुद्रा में देखकर उससे न रहा गया । बोल उठी, "क्या बात है, बाई सा ?"

"मनका !"

"हाँ ।"

"तेरी ऐसी कोई भायली (दोस्त) है जिसका ब्याह हो चुका है ?"

"हाँ, कई हैं ।"

"ब्याह के समय वे कैसी लगती थीं ?"

"सच कहती हूँ कि बाई सा, उनके पग जमीन पर नहीं पड़ते थे । खुशी में फूली नहीं समा रही थीं ।"

कृष्णकुँवर ने एक लम्बी आह भरी ।

गीत अब भी गूँज रहा था :

तीज रमण रो,
धण ने खेलण रो चाव,
ढोला जी हो...... ..
लोनी मजो हे लोड़ी तीज रो
हो जी हो ढोला मारू
सावण पैली आयजो जी
म्हाँरे भरिये भादूड़े री तीज
ढोला जी रे......
लोनी मजो हे लोड़ी तीज रो

कृष्णकुँवर का यौवन जैसे पुलक उठा हो इस गीत से । वह

अंगड़ाई लेकर उठी और दीवार के सहारे हाथों का सम्बल लेकर खड़ी हो गई। अब उसे उन औरतों का झुंड साफ नजर आता था जो अपने तमाम ज़ोर-शोर के साथ इस गीत को गाकर गाँव की उन औरतों को उस समय की मीठी-मीठी और पुलक-भरी याद दिला रही थी जब उनके पति परदेश जा रहे थे और वे उनसे सावन के मादक महीने में लौट आने का कौल करा रही थीं।

कृष्णकुँवर ने मनका को अपने नजदीक घसीटते हुए बड़े स्नेह-संचित स्वर में पूछा, "मनका ! यदि तेरा पति भी तुझे छोड़कर परदेश जाता, क्या तू उसे ऐसा ही कहती ?"

मनका समझ नहीं पा रही थी कि आज बाई सा को क्या हो गया है ? वह इतनी आत्मीयता से उसके साथ क्यों पेश आ रही है ?

उसे अपने हृदय से क्यों चिपका रही है ?

लेकिन मनका ने अपनी स्वामिनी को प्रसन्न करने के लिए कहा, "हाँ, बाई सा ! मैं ऐसा ही करती।"

"और तेरा मोट्यार (पति) न मानता तो ?"

"तो मैं उसके पगों में बेड़ियाँ डाल देती, जाने ही नहीं देती ? मैं इतनी सीधी नहीं हूँ।" मनका के स्वर से ऐसा मालूम होता था कि इन गुलामों के दुख भरे जीवन के ये क्षण नखलिस्तान के समान हैं।

"तू बड़ी बदमाश है, कहीं अपने मोट्यार से ऐसा सलूक किया जाता है ? इससे भगवान विराजी हो जाता है ? कृष्णकुँवर ने उपदेशात्मक शैली में कहा।

मनका ने तब झट से पूछा, "और आप...?"

"मैं...।" कृष्णकुँवर कुछ देर तक चुप रही फिर सन्तप्त स्वर में डाँटती हुई बोली, "तेरी जबान कतरनी की तरह खूब चलने लगी है। मैं जो पूछूं उसका जवाब दिया कर, अपनी ओर से सटर-मटर जवाब न दिया कर, समझी।"

मनका ने काँपते स्वर में कहा, "हाँ बाई सा।"

मनका चुप्पी लगाकर बैठ गई। चाँदनी के दुधिया प्रकाश में बाई सा का उसने उतरा हुआ मुँह देखा।

गीत की अन्तिम पंक्तियाँ आकाश में गूँज रही थीं :

"हो जी ढोला मारू जी,

घोड़ी थे लाय जो कूदणी जी, कोई

चाबुक लीजो थारे हाथ

ढोला जी रे...

लोनी मज़ो हे लोड़ी तीज रो।"

कृष्णकुंवर ने पल भर के लिए अपनी आँखें मूंद लीं। उसे ऐसा महसूस हुआ कि जैसे भींटिया उसका पति बना, घोड़े पर सवार होकर उसकी ड्योढ़ी के आगे खड़ा है और वह खुशी में पागल हुई उसकी अगवानी के लिए दौड़ रही है। उसे यह भी ख्याल नहीं आ रहा कि वह स्वयं दुल्हिन है।

लोग क्या कहेंगे ? उसकी सहेलियाँ क्या समझेंगी ? कहेगी—लोक-लज्जा का आवरण तोड़कर यह कामिनी अपने मानस-मन्दिर में प्यार का उमड़ता हुआ तूफान लिये अपनेदेवता के सम्मुख जा रही है। इसकी अर्चना भी भक्ति के साथ-साथ श्रद्धा है। नारी का चरम रूप, श्रद्धा। अपने आराध्य के चरणों में जीवन का महान समर्पण करने में संसार का भय क्यों ? करने दो। अपनी विपुल महत्वकाँक्षाओं का महादान इसे।

कृष्ण का रोम-रोम पुलक उठा। वह विभोर-सी हो गई। कल्पना के क्षणिक सुख के वरदान ने उसे सुखी प्राणियों का सम्राट बना दिया।

सपने का आना मीठा होता है और टूटना बहुत ही पीड़ाजनक। मधुर कल्पणा का अन्त दुख से भरापूरा होता है।

मस्तिष्क की चेतना ने उसे वस्तु-जगत के कठोर पत्थरों पर ला पटका। कठोर पत्थरों की तीखी चट्टानों की रगड़ से उसके हृदय के तार-तार में पीड़ा का संचार हो उठा। पीड़ा के संचरण ने उसकी आँखों को तरल कर दिया और देखते-देखते उसकी आँखों से गंगा-यमुना बह

उठी। वह अपने मोचे पर औंधे मुंह गिर पड़ी। सिसकियाँ सुन मनका का मन काँप उठा। वह कृष्णा के पाँव टीपने के लिए ज्योंही आगे बढ़ी त्योंही कृष्णा भड़क उठी, "मैंने तुझे हजार बार कह दिया है कि तू मेरे पाँव मत छूआ कर, जा यहाँ से।"

"नीचे ?"

"नीचे नहीं तो क्या ऊपर जायेगी ?"

मनका नीचे उतर गई।

कुछ देर रोने के बाद कृष्णा स्वस्थ हुई। सबसे पहले उसके विचार अपनी बड़ी बहन की नीयत पर गये। उसका रूखा व्यवहार बोल उठा कि कृष्णा तेरी बहिन तुझे अपनी तरह आजीवन कुँवारी रखना चाहती है। जब उसने संसार का सुख नहीं देखा, तो फिर तुम कैसे देख सकती हो ? सम्भल, उसकी बातों में रहेगी तो अपना हीरा-सा जीवन व्यर्थ ही गुमायेगी।

कृष्णा के विचारों में दृढ़ता आने लगी। उसकी बदलती हुई आकृति भयंकर परिणाम से टकराने की सूचना दे रही थी।

फिर वह बिस्तरे पर करवटें बदलने लगी।

तब उसकी शान्त विचार-धाराएँ उसके मस्तिष्क में उठने लगीं। एक विचार ने कहा कि झींटिया जाट है और तू राठोड़। कैसे मेल होगा ?

कृष्णा के सामने राजपूताना की अमर प्रणय कथा नाच उठी। रेत के स्वर्णिम धोरों में आज भी इनकी अमरता बरस रही है कि प्रेम जैसी महान पवित्रता के नाम पर रामू-चनणा मिट गये।

रामू-चनणा !

एक सुनार और ठाकुर की बेटी !

कैसा अनहोना संयोग ?

पर प्रेम का सर्वोपरि है। उसकी विशालता में जाति-भेद गौण है। प्रेमी की आत्मा में अपरिसीम सुख-दुख सम्मिलित हैं। जगत ही प्रेम-रस

में डूबा जान पड़ता है। प्रेम के उन्माद में प्राणी कहने लगता है, "प्रेम को पतित कहते वाले प्राणियो ! ध्यान से सुनो, प्रेम परमेश्वर है। अमर है। वेसुधैव कुटुम्बकम् की भावना का उद्गम है।"

कृष्णा ने निश्चय किया कि यदि प्रेम का रूप इतना व्यापक है तो उसे भी प्रेम करने का पूरा हक है। उसे प्रेम की अनुभूति की पीड़ा और मृत्यु का आमन्त्रण स्वीकार है।

तब कृष्णा के सम्मुख लालकुंवर का सूखा मुंह हँस उठा। विद्रूप व विडम्बना मिश्रित हँसी से कृष्णा का मन तिलमिला उठा। उसने अपने दोनों हाथों से अपना सिर पकड़ लिया। आँखें बन्द कर लीं और तकियों में मुंह छिपाकर सिसक पड़ी।

पुरवैया का झोंका सनसनाता हुआ उसके कानों के समीप से यह कहता हुआ गुजरा, "देखो कृष्णा ! वंश-मर्यादा के बाहर रखा हुआ कदम बचकर नहीं रह सकता। वह कटकर ही रहेगा। अपने आपको मत देखो, इस डेरे को देखो। इस डेरे की मर्यादा और आन-शान को देखो।"

सनसनाती हवा में यह आवाज रात भर गूँजती रही।

: ७ :

भोर का तारा जैसे ही डूबा, वैसे ही वह बात प्रकाश की तरह सारे गाँव में फैल गई कि साहूकार प्रभु की शरण पधार गये हैं। साहूकार के घर से नवजात शिशु की तरह टूटता हुआ रोने का स्वर निकल रहा था। यह स्वर साहूकार की बुड्ढी बहिन का था, जो लोक-लाज के भय से रोना धर्म समझकर रो रही थी।

उसकी स्त्री भीतर ओरे (घर के भीतरी भाग का कमरा) में मौन-रोदन कर रही थी जिसे पड़ोस की औरतें पड़ोसी का धर्म समझकर

सांत्वना दे रही थीं कि प्रभु को जो मंजूर होता है, उस पर आदमी का कोई अख्तियार नहीं है।

कुछ पड़ोसी अर्थी बांध रहे थे। उनका कहना था कि हम जब तक अर्थी बाँधेंगे तब तक इनके दूर के भाई का लड़का आ जाएगा और वह क्रिया-कर्म कर देगा।

इस समय गाँव के पण्डित जी चुप नहीं रह सके। अश्रु-विहीन आँखों को अपने अँगोछे से पोंछते हुए दुख भरे स्वर में बोले, "पुरखों ने जो कहा, वह कितना ठीक कहा है कि कपूत बेटा कांध देने के तो काम आएगा। आज साहूकार जी निपूते नहीं होते तो 'हे रे बाप जो हो हे रे' चिल्लाकर रोने वाला तो होता। पर भगवान को जो मंजूर होता है उस पर बन्दे का कोई अख्तियार नहीं।"

देखते-देखते झींटिया के अलावा सारे गाँव के जाने-माने व्यक्ति एकत्रित हो गये। चौधरी पुरखाराम भी एक कोने में बैठा था। उसका चेहरा भी साहूकार के निर्जीव शरीर को देखकर उदास हो गया था। वह दुख से भर उठा, "एक दिन हरएक आदमी को इसी मिट्टी में मिल जाना पड़ेगा।"

'पर चाचा, साहूकार बड़ा अत्याचारी था।"

"ऐसा नहीं कहना चाहिए, खेतू, मरने वाले के अवगुणों को देखना हमारे देश का धर्म नहीं, फिर हम सभी लोग देख ही रहे हैं कि मरने वाला अपने साथ इस तीन गज कफन के अलावा कुछ भी नहीं ले जा रहा है।"

हौले-हौले वातावरण पर वेदना का साम्राज्य स्थापित होने लगा। साहूकार की बहिन का टूटता हुआ स्वर अब भी आकाश में हल्की-हल्की हवा की तरह आवाज करता हुआ गूँज रहा था। अर्थी बँध रही थी।

पण्डित जी गोदान, जमींदान और दान-पर दान कराते जा रहे थे। मन्त्रों के बीच-बीच में सेठानी को सावधान करते जा रहे थे, "देना है सो दे दे, यह साहूकार जी का कमाया धन है, इनके पीछे जितना लुटा

देगी, जगत तेरी वाह-वाह करेगा। कहेगा कि सेठानी खुले हाथ सेठ जी के पीछे धर्म कर रही है।"

झींटिया मास्टर के यहाँ बैठा-बैठा मस्ती में झूम रहा था। गा रहा था, झूम-झूमकर तान छेड़ रहा था। मास्टर किंकर्तव्य-विमूढ़-सा कुछ देर तक झींटिया की सभी हरकतों को देखता रहा। देखता-देखता जब ऊब गया तो तनिक ऊँचे स्वर चीखा, "झींटिया ?"

झींटिया का सपना भंग हो गया। पलभर के लिए उसके प्रसन्न चेहरे पर गम्भीरता छाई, फिर वह उस उन्मादी की तरह जो अपना घर लुटा रहा हो, खुशी लुटाने लगा, "नाचिये मास्टर जी नाचिये, घी-खांड, (शक्कर) का चूरमा खाइये, चूरमा।"

"अरे क्यों ?"

"किसी की मौत पर दूध का कटोरा पीकर आत्मा को तुष्ट कीजिये, आप नहीं जानते, आज साहूकार जी देवलोक पधार गये हैं।" झींटिया की आँखों और आवाज में उसके अन्तर की तिलमिलाती डाह एवं तीखा व्यंग था।

"साहूकार मर गया ? ' मास्टर को जैसे विश्वास नहीं हो रहा था।

"हाँ, इस जमीं का पाप उठ गया।"

"तभी तू खुशी मना रहा है ?"

"हाँ, नीच ने सारे गाँव को सिर पर उठा लिया था। किसी को कुछ समझता ही नहीं था। गाँव में ऐसे अकड़ कर चलता था जैसे हम बड़े, गली संकरी, बाजार का रास्ता किधर है ? ऐसे मरा जैसे कीड़ा। बड़ा कमीना था मास्टर जी, मिनख को मिनख नहीं समझता था। इसको कुड़क कराया, उसको लूटा···।"

"झींटिया ! गहरी शत्रुता को छिछली शब्दावली से बाहर निकाल कर अपने हृदय के जोश को ठंडा न करो। साहूकार तो मर ही गया, अब इन कारिन्दों का शासन देखना।"

"कारिन्दों का नहीं, लालकुँवर का; बेचारी कुंवारी ही रह गई।"

व्यंग-मिश्रित बनावटी दुख से चेहरा उतारता हुआ भींटिया कहने लगा, "मास्टर जी ! मुझे इस अखन कुंवारी पर बड़ी ही दया आती है। क्या साधें लेकर जन्मी थी, बेचारी ने स्त्री-सुख तक नहीं देखा, भगवान भी कितना निर्मोही है ? सबको देखा, पर इस बेचारी को नहीं देखा। क्या रूप था, क्या नाक-नकशा था, क्या कोमल-सी···।"

मास्टर ने उसे बीच में ही रोका, "बस बस, रहने भी दे। इतनी दया इन डेरेवालियों की ओर प्रकट करना अच्छा नहीं है, सिर पर चढ़ जायेगी।"

दोनों धीरे से हँस पड़े।

हरखा ने दो गिलास दूध को लाकर उन दोनों के सामने रखी। उसकी आँखों में मार्मिक वेदना थी।

"हरखा ! तू किसका 'सापा' (मरने के बाद वृद्ध मृतक पीछे दस दिन तक औरतें गा-गाकर रोती हैं) कह रही हैं।"

"अपने खसम का ?" तड़ाक से हरखा ने बिना सोचे-समझे उत्तर दिया और बिना किसी को देखे भीतर चली गई।

"क्या हुआ है इसे ?" भींटिया ने पूछा।

"रूठ गई ?"

"किससे ?"

"मुझसे।"

"आप से, यह क्या कहते हैं मास्टर जी ?"

"ठीक कहता हूँ, वह मुझसे नाराज हो गई है ?"

"कारण ?"

"हम लोग शहर चल रहे हैं न ?"

"मास्टर जी ?" भींटिया गंभीर हो गया, "यह हरखा आपको बहुत चाहने लगी है।"

'जानता हूँ, इसने हम लोगों के साथ एक आत्मीय सम्बन्ध स्थापित कर लिया है। हमारा विच्छोह सचमुच इसके लिए दुखदायी है।"

मास्टर की आँखों में इतना कहते-कहते प्रेम की अनुभूति से उत्पन्न दर्द तरलता का रूप धारण कर पैदा हो गया।

झींटिया खिहँस उठा, "लेकिन मास्टरजी, आप उदास क्यों हो गए ?"

"मैं, नहीं तो ?" मास्टर संभला, "बात यह है कि यह नादान क्यों किसी से लगाव के बन्धन जोड़ती है। प्रेम, स्नेह, अपनापन, सभी तो इनके लिए घातक हैं।"

"क्यों ?"

"इसलिए कि समाज जिस प्राणी पर सन्देह की दृष्टि रखता है, उसके पवित्र बन्धनों को इतना कच्चे धागे से पिरो देता है कि हाथ लगा और टूटे। इसलिए उसे हर दूसरे प्राणी से इतना ही सम्बन्ध रखना चाहिये जिसे लोग व्यवहार के नाम से पुकारते हैं। व्यवहार की परिधि का उल्लंघन उसके लिये जीवन का अभिशाप बन सकता है। उसके जीवन को दुखमय बना सकता है। लांछना, प्रताड़ना और बुरी अफवाहें उसके दुखमय जीवन को इस तरह विकृत बनाने लगती हैं जिस प्रकार गिद्ध मरे जानवर की लाश को विकृत करते हैं।"

मास्टर के इस गम्भीर कथन को झींटिया कुछ समझा और कुछ नहीं समझा। पर उसने इतना जरूर महसूस किया कि हरखा का उनके प्रति लगाव का बन्धन अच्छा नहीं है। कहीं मास्टर भी······। नहीं, मास्टर जैसा साधु प्रकृति का आदमी बुरा हो ही नहीं सकता। वह गाँव में शिक्षा का दान देने आया है, वह देगा और देकर एक दिन चला जायेगा। तब हरखा के बन्धन ·····।

"मास्टर जी ?" झींटिया को अपने आप पर गुस्सा आया कि उसने क्यों मास्टर जी के प्रति इस तरह की बुरी बात सोची। यह उसने अच्छा नहीं किया। वे निष्कलंक हैं।

और मास्टर उसकी ओर भावुकता से देख रहा था।

कुछ देर मौन रहने के पश्चात् झींटिया ने कहा, "बेचारी हरखा ने सुख का मुँह तक नहीं देखा ?"

'जानता हूँ।"

"शायद सुख क्या है, सपने में भी इसने नहीं जाना होगा।"

"इसलिये ही तो कहता हूँ कि बहुत दिनों का प्यासा जल को देख-कर इतनी उतावली से पानी का घूंट गले से उतारना चाहता है कि वह घूंट गले में अटककर भयानक पीड़ा का संचार कर देता है। इसलिये पानी को सामने देखकर प्यासे को और धीरज धारण करनी चाहिये, नहीं तो दुःख पाने की समस्या अचानक आ जाती है।"

"आप ठीक कहते हैं मास्टर जी, यदि आप कहे तो मैं ही उसे···।"

"नहीं झींटिया, उसके दिल को मत तोड़ो, वह बहुत दुःखी है और हम भी तो फिर चले ही जायेंगे। हाँ, देखो, आज कृष्णकुँवर की बाँदी आई थी, उसने सन् ३२ के झूठे राजद्रोह षंडयन्त्र केश के वीर सेनानी चन्दनमल बहड़ की दरख्वास्त सुननी चाही है, मेरे सिर में दर्द है, यदि तू जा सकता है तो वह फाइल लेकर चला जा। बीकानेर का यह राजद्रोह षंडयन्त्र, रियासती शासन की अत्याचार को वह नंगी मिसाल है जिसे सैकड़ों वर्ष जनता अपने हृदय से नहीं भूल सकती।"

"चलकर, सुना आऊंगा।"

"और मेरी ओर से क्षमा माँगते हुए कहना कि उनके सिर में आज बड़ा ही दर्द है, इसलिये नहीं आ सके। आप अन्य अर्थ मत लगाइयेगा।"

झींटिया चला गया।

मास्टर अपने बारे में सोचने लगा, "यदि वह उस मिट्टी में पैदा होता। जो स्वतंत्र होती, जहाँ मनुष्य के विवेक का इतना विशाल विकास होता कि वह सुधार को पाप नहीं समझता तो समाज अपने तेज नाखूनों से मजबूरों को नहीं सताता। शायद उस समय वह हरखा को अपनी बना ही लेता।"

: ८ :

झींटिया इतनी धीमी चाल से डेरे की ओर बढ़ रहा था जितनी धीमी चाल से बरसात की ऋतु में ममोल। उसकी दृष्टि सूरज की ओर थी जो क्षितिज के अधरों को चूम रहा था और उस चूमने से जो प्रेमवर्षण किरणों के रूप में हो रहा था, उससे खेतों का सौन्दर्य निखर उठा था। बालों पर पड़ती हुई छितराती किरणों का प्रकाश प्रकृति के सौन्दर्य में मोहक आकर्षण पैदा कर रहा था। हरे-हरे पत्तों पर फैलती धूप की चमक से ऐसा महसूस हो रहा था जैसे सौन्दर्य का एक झरना पश्चिम की ओर प्रवाहित होता हुआ इस गाँव को सुनहला बना रहा है। उसकी अरुणिम रेत को स्वर्णिम बाना पहनाकर उसे विशेष प्रिय बना रहा है।

डेरे के आगे कुछ गोलें झाड़ू लगा रहे थे। कुछ गोलियाँ डेरे से सामान ले जा रही थीं। गोलों की अपनी मिट्टी तथा गोबर से लीपी राते (हल्का भूरा रंग) रंग की छोटी-छोटी कोठड़ियों से धुँआ निकलने लग गया था। मनका एक कारिन्दे से गर्म स्वर में बोल रही थी जिससे साफ मालूम होता था कि इस कारिन्दे ने मनका से कोई भद्दी छेड़-खानी की है।

न जाने झींटिया को इस समय कृष्णा की बजाय ढोलकी की क्यों याद हो उठी? वह चंचल और नटखट ढोलकी और उसके खट्टे-मीठे, चटपटे बोल। सब-के-सब झींटिया के मस्तिष्क में हलचल मचाने लगे।

तभी मनका ने दौड़कर उनकी अगवानी की।

'क्या, मास्टर जी नहीं आयें?"

"नहीं?" झींटिया ने छोटा-सा उत्तर दिया।

"क्यों?"

"उनके सिर में दर्द है।"

"जोर का ?"

"हाँ, वे यहाँ तक नहीं आ सकते ।"

वह अपनी आँखों को मटकाकर बोली, "राम-राम ! यह तो बहुत बुरा हुआ ?"

"बुरा क्या ? सवेरे तक ठीक हो जायेगा ।"

"दवा ?"

"पहले यह बता कि तू है कौन ?" झींटिया को महसूस हुआ कि यह कौन फालतू छोकरी है जो फटफटा सवाल-पर-सवाल किये जा रही है ।

"मैं मनका हूँ ।" उसके स्वर में दृढ़ता थी ।

"मनका ?"

"और तू ।" उसने तेज नजर झींटिया पर जमा दी ।

"मैं तो झींटियो हूँ ।"

"झींटियो ।" उसने ऐसा भाव दिखाया जैसे उसे यह नाम पसन्द नहीं है ।

"नाक भौं क्यों सिकोड़ती है ?"

"नहीं तो ।"

"झूठ बोलती है, जा, तेरी बाई सा-बाइ सा से कह दे कि झींटिया मास्टर वाली दरख्वास्त सुनाने आया है ।"

मनका तुरन्त डेरे में जाती-जाती बोली ।

'तू भीतर आजा ।"

"मैं भीतर नहीं आऊँगा ?"

"क्यों ?"

"तू पंचायत करना बन्द करेगी या मैं वापस चला जाऊँ ? जो मैं कहता हूँ, वह जाकर अपने बाई सा को सुना दे, कृष्णकुंवर को ।"

"भोत चोखो ।" मनका ने बनावटी क्रोध में मुंह बिचकाया । कृष्णा मनका के साथ बाहर आई । कृष्णा के चेहरे पर प्रसन्नता नाच रही थी ।

झींटिया ने एक लम्बे अर्से के बाद कृष्णा को देखा था इसलिए देखता ही रह गया। राजपूती-नस्ल की सुन्दर शक्ल की ओर उसकी दृष्टि-विमोहित-सी हो गई। वह देखता ही रहा, अनिमेष दृष्टि से।

"झींटिया ?" कृष्णा ने उसके ध्यान को तोड़ा।

"हुक्म अन्नदाता।" झींटिया यह भी भूल गया कि यह सामने खड़ी हुई अलौकिक रूप की वर्षा करने वाली युवती उसकी शत्रु है। वह सौन्दर्य दर्शन के क्षणिक आवेश में युगों से चले आ रहे, प्रजा और राजा के रूढ़िगत साधारण शिष्टाचार की क्रिया कर बैठा।

कृष्णा एकटक दृष्टि से उस झींटिया को देखती रही जो सूरज की तरह प्रकाशमान था और चाँद की तरह शाँत।

"तू भीतर क्यों नहीं आया ?" कृष्णा के स्वर में आग्रह था।

भाव-जगत पर वस्तु-जगत का और प्रहार।

अतीत का झींटिया के स्मृति पटल पर घात, प्रतिघात।

वह तिलमिला उठा, "मैं भीतर नहीं जाऊँगा।"

"आखिर क्यों ?" उसके स्वर में गहरी आत्मीयता ने झींटिया की तिलमिलाहट को थोड़ा-सा हिलाया, "इसलिए कि ठाकुर सा ने तेरे बाप को लड़ाई में भेज दिया, मैंने तो नहीं भेजा। मैंने तेरे प्रति कोई अन्याय नहीं किया!"

"हाँ, तूने तो नहीं भेजा, फिर भी मैं इस डेरे में नहीं जाऊँगा। इस डेरे की हर ईंट मुझे तेरे बाप के अत्याचारों की याद दिलाती है।"

"कोई बात नहीं, आज मैं तेरे संग कहीं भी चल सकती हूँ। साहूकार जी की मौत के कारण लालकुंवर बाई सा, गाँव के नये प्रबन्ध में संलग्न है। बोलो, कहाँ चलोगे, खेतों की झुरमुट में या रेत के टीलों की ओट में ?"

"जहाँ आप कह देगी, वहीं ?"

"पीछे वाली बारादरी पर चलोगे।"

"चल सकता हूँ।"

दोनों बारदरी की ओर चले। मनका को छुट्टी दे दी गई। वर्षों के बाद दोनों मिले थे, इसलिये दोनों बिल्कुल चुप थे, कहाँ से बात छेड़ी जाय, दोनों यह सोच ही रहे थे कि भींटिया ने चढ़े हुए स्वर में कहा, "मुझे मास्टर जी ने दरख्वास्त सुनाने भेजा है।"

"तो क्या, तू पढ़ना भी जानता है ?"

"जानता ही नहीं हूँ, आपको भी पढ़ा सकता हूँ।"

"सच।" उसके स्वर में अपनापन छलछला उठा।

दोनों की आँखें टकरा गईं। भींटिया शर्मा गया। वह सोचने लगा कि उसे कृष्णा के सामने इतने अभिमान की बात नहीं कहनी चाहिये। वह शहर से पढ़-लिखकर आई है। कितने अच्छे ढंग से बनती-संवरती बोलती-चालती है।

"तू छोरियों की तरह क्यों लाल-पीला हो रहा है ?"

"बात यह है···।" वह पूरा नहीं बोल सका।

"अच्छा, वह दरख्वास्त सुना तो।

भींटिया की निगाहें एक पल कृष्णा की हंस के पंखों की भाँति चंचल पुतलियों पर टिकी और फिर वह उस दरख्वास्त को पढ़ने लगा,

दरख्वास्त

ब अदालत डिस्ट्रिक्ट जजी,

सदर बीकानेर,

जनाबे आली,

मुकदमा सदर में मुझ मुजलिम की अदब से गुजारिश है कि कार्यवाही मुकदमा शुरू करने के पेश्तर पुलिस ने मेरे ऊपर जो रोमाँच-कारी अत्याचार व पाशविक जुल्म किये हैं, उनकी बराय मेहरबानी तहकीकात फरमाई जाकर तदारूक फरमाया जावे।

(१) यह कि तारीख १३ जनवरी को मेरी गैर-मौजूदगी में मेरे घर की तलाशी पुलिस ने ली। इन्सपैक्टर पुलिस राजवी चन्द्रसिंह मय पार्टी मेरे घर में बिला इत्तला दिये सीधे ही घुस गये, मेरी स्त्री के

सिवाय कोई घर का आदमी न था और गो सायल की स्त्री पर्दानशीन व जो इज्जत घराने की है, मगर बावजूद सके भी चन्द्रसिंह राजवी जी इन्सपैक्टर ने उसको धमकियाँ देकर अपने सवालों का जवाब देने को मजबूर किया। इन धमकियों की वजह से व अचानक इस तरह मय पार्टी उनके घर में घुस आने की वजह से उस शरीफ औरत पर रोब-बरपा कर दिया और वह निःसहाय अबला बेहोश हो गई और उसका बदन थर-थर काँपने लगा और चक्कर आने लगे।

(२) यह है कि असना में सायल की माता व चचेरा भाई इत-फाक से वहाँ आ गये। इन्सपैक्टर साहब पुलिस ने कपनी पार्टी के रूबरू उन जीइज्जत स्त्रियों की जामा तलाशी किसी एक मुसम्मा गीगली से कराई ताकि उनको लोगों के सामने बेहुरमत व जलील किया जावे। इन्सपेक्टर साहब पुलिस मुसम्मात गीगली को उन स्त्रियों के बदन की कभी अपने हाथ से व कभी बेंत से छूकर हिदायत करते थे कि यहाँ की तलाशी लो, व वहाँ की तलाशी लो। यह अर्ज कर देना मुनासिब होगा कि सायल मुलजिम एक पोजीशन का आदमी है और वह शहर चूरू की म्युनिस्पिल कमेटी व अनिवार्य शिक्षा कमेटी का चुना मेम्बर है और कलकत्ते में स्टर्लिंग एक्सचेंज की दलाली करता है।

(३) यह कि तलाशी १२ बजे दोपहर से लगाकर १२ बजे रात तक ली जा रही है, मगर इस असना में खाना बनाने व बाल-बच्चों को खिलाने तक की सहूलियत भी नहीं दी गई। बवक्त तलाशी एक टीन के छप्पर के नीचे जो चारों तरफ से खुला और जिसमें गाय व बछड़े बंधे रहते हैं, इन स्त्रियों व बच्चों को बिठाये रखा।

"जंगली कहीं के।" कृष्णा के मुंह से हठात् सरोष निकले शब्दों ने झींटिया के तारतम्य को तोड़ दिया। झींटिया ने कृष्णा की जलती हुई मुद्रा को देखा और पढ़ने लगा।

(४) यह कि गो वारन्ट तलाशी महज सायल तलाशी मुलजिम के खिलाफ था फिर भी इन्सपेक्टर साहब पुलिस ने उस हिस्से मकान की

तलाशी ली, जो मेरे चचेरे भाई के कब्जे में है और जो कि मुझसे कोई सरोकार नहीं रखता व अलहदा रहता है, खिलाफ कानून व जाब्ता मन्शा वारन्ट ली। हालांकि मेरे भाई श्री लाल ने इस बात पर सख्त एतराज किया मगर एतराज की कुछ सुनाई न की गई और श्री लाल की औरत के बक्सों व ट्रंकों के ताले तोड़ दिये गए, क्योंकि वह अपने मामा के गई हुई थी और चाबियाँ उसी के हमराह थीं।

(५) यह कि गो वारन्ट खाना तलाशी में यह साफ लिखा हुआ था कि पुलिस महज ऐसी दस्तावेजात अपने कब्जे में लेवे जो बीकानेर राज्य के खिलाफ हिकारत व बेदिली फैलाने की मंशा रखती हों, मगर पुलिस ने बिना अख्तियार भारतीय राष्ट्रीय नेताओं की तस्वीर व सायल मुल-जिम की बनायी हुई कविता कि जो अखिल भारतीय हिन्दू महासभा के अष्टम अधिवेशन कलकत्ता के मौके पर सभापति लाला लाजपतराय के स्वागत में पढ़ी गई थी, ४८ प्रतियाँ व अन्य समाज-सुधार सम्बन्धी जातीय पत्र-पत्रिकायें भी पुलिस ने अपनी तहवील में ले ली।

(६) यह कि वारन्ट खाना तलाशी की तामिल इस तरीके से की गई कि खौफ बरपा कर दिया जाय और गो वकफा तलाशी में कि जो बारह घन्टे का था, तमाम घर को बुरी तरह से छान-बीन कर डाला, फिर भी इंसपेक्टर साहब के जान-बूझ कर वर्दी के साफे को कहीं छिपा दिया और यह बहाना बनाया कि अपना पल्लू ढूंढ़ने के लिये मैं कल फिर आऊँगा। जिस वजह से मेरे घर वाले दुबारा तलाशी के डर में मुब्तिला रहें।

यह कि एकाएक १५ जनवरी को करीब ६ बजे शाम को वही इन्सपेक्टर पुलिस हमराह अफसरान व कानिस्टेबलान पुलिस मेरे घर में घुस आये और मुझे व आवाज बुलन्द कहा है कि तुम्हें कुछ देर के लिये कुँवर सम्बलसिंह जी साहब डी. आई. जी. पी. रैस्ट हाउस पर बुला रहे है चलो। चूंकि खाना तैयार था, मैंने खाना खा लेने की मोहलत चाही, पर मोहलत न दी और कहा कि चलो, वहाँ थोड़ी ही देर लगेगी।

वापिसी पर खा लेना। ब अमल मजबूरी मैं उनके साथ हो लिया।

(८) ज्यों ही सायल मुलजिम रैस्ट हाउस पर पहुँचा, पुलिस के अफसर साहब ने मुझे एक बगल के कमरे में बन्द कर दिया और हुक्म दिया कि तुमको हमारे साथ बीकानेर चलना होगा, तुम्हारा बिस्तर व सफर खर्च व खाना यहीं मंगवा देता हूँ। मगर तुमको अब घर नहीं जाने दिया जायेगा और न अब तुम किसी से मिल सकते हो।

(९) मेरा भाई जो बेहुक्म पुलिस मेरा खाना व बिस्तर लेकर आया, उसे मुझसे मिलने व देखने तक भी नहीं दिया गया और टेढ़े-मेढ़े रास्तों से सर्दी में रात के ग्यारह बजे मुझे रेलवे-स्टेशन पर लाकर एक कमरे में बन्द कर दिया और बाद में मुझे छिपाकर रेल के अन्धेरे डिब्बे में बैठाकर खिड़कियाँ डाल दी गई ताकि मेरे ले जाने का सुराग किसी को न लग सकें।

(१०) तारीख १६-१-३२ को बीकानेर पहुँचने पर मुझे शहर से बाहर बियाबान जंगल में एक निहायत ही गन्दे बे आबाद मकान में हिरासत में रख दिया और चार कांस्टेबिल हर वक्त मुझ पर कड़ा पहरा देते रहें व इन्पेक्टर-साहब पुलिस मजकूरा वाला मुझे धमकियाँ, लालच व फुसलाहट से तंग करते थे।

(११) १९ जनवरी को एकाएक शाम को ५ बजे राजवी चन्द्रसिंह जी इन्सपेक्टर ने मुझे बिस्तर बाँधने का हुक्म दिया और मुझे टेढ़े-मेढ़े रास्तों से स्टेशन ले गये। इन्सपेक्टर साहब खुद तो साइकल पर सवार थे और मुझे उनके साथ पैदल ही भाग-दौड़कर १५ मिनट में करीब डेढ़ मील का रास्ता तै करना पड़ा और रेलवे स्टेशन पर लाया जाकर मैं बन्द डिब्बे में बैठा दिया गया। दो कांस्टेबलान सब इन्सपेक्टर साहब मजकूरा वाला मेरे हमराह बनकर बैठ गये और मुझे बार-बार दरयाफत करने पर भी यह नहीं बताया कि कहाँ ले जा रहे हैं। एकाएक रतनगढ़ स्टेशन पर उतारा गया और धर्मशाला में रायसिंह छात्र ट्रेनिंग स्कूल व लक्ष्मनसिंह काँस्टेबिल के पहरे में बैठाकर इन्सपेक्टर

साहब खुद चले गये और थोड़ी देर बाद हमराह हवलदार रेलवे पुलिस व एक दीगर कॉंस्टेबिल इन्सपेक्टर साहब वापस आये और आते ही मुझे हथकड़ियाँ डाल दी और कहा कि तुम्हें १२४ अ में गिरफ्तार किया जाता है। रात को दो बजे जिला मजिस्ट्रेट साहब रतनगढ़ के रूबरू कमरे की आयत में हाजिर और १५ रोज का रिमाण्ड पुलिस ने लिया गो सायल मुलजिम ने एतराज भी किया।

"एतराज से क्या होता जाता था, पूरा जाल था कानून के नाम, यह चन्द्रसिंह राजवी हैं या दानवी ?" क्रोध था कृष्णा के स्वर में।

"नौकरी पेशा का स्वामी भक्त कुत्ता।" झींटिया ने दुत्कारा।

(१२) २० जनवरी को मुझे बीकानेर लाइन पुलिस में लाया गया और महज जलील करने की गरज से मेरा बिस्तर भी मेरे कन्धों पर लदवाया गया। पुलिस लाइन में मुझे नम्बर ९ की कोठरी में हथकड़ियाँ लगे बैठाकर, हथकड़ी की जंजीर का दूसरा सिरा चारपाई से ताले से जड़ दिया गया। २१ जनवरी से ले ३ फरवरी तक सवेरे एक गज से भी चौड़े पांव कराकर व हाथों को सीधा फैलाया रखकर मुझे खड़ा किया जाता था। ता० २१-१-३१ को रामसिंह ने मुझे सीधा खड़ा रखने की निगरानी में बहुत-सी माँ-बहिन की फोश गालियाँ दी, गला पकड़कर मेरा सिर दीवार से टकराया और छाती व सिर में घूंसे लगाये। व नीज पर मारने के लिए अपना जूता भी उठाया और फोतों पर ठोकर मारने की भी चेष्टा की।

(१३) ता० २२ जनवरी को आई. जी. पी. साहब व डी. आई. जी. पी. साहब. ने मुझे गालियाँ दी और अपने श्रीमुख से फरमाया कि यह साला बदमाश है। यह बहन···मादर···(वगैरह) फोश गालियाँ देकर कहा, यों इकबाल नहीं करेगा। इतना कहकर खुद उन्होंने मेरे बायें कान व गाल पर थप्पड़ लगाये व बाद में जब तक मैं वहाँ रहा, इनका ऐसा ही सलूक मेरे साथ रहा। यही वजह है कि मेरे कान में बहुत अर्से तक दर्द रहा और अब मुझे उस कान से सुनाई भी नहीं देता।

"वास्तव में भींटिया यह कौम अत्याचार पर सत्ता कायम किए हुए थी।" पर भींटिया लगातार पढ़ता ही जा रहा था।

(१४) करीब तीसरे या चौथे दिन राजवी चन्द्रसिंह जी ने आई. जी. पी. व डी. आई. जी. पी. साहब से, मेरे रूबरू मेरी तरफ इशारा करते हुए कहा कि मैं आज ही ट्रेन से इसकी माँ व औरत व बच्चों को चूरू से यहाँ बुला लूँ या वहीं पुलिस-लाइन से बाहर रखूँ। इस पर आई. जी. पी. साहब ने फरमाया कि यह काफिर सुअर ऐसे कहीं बताता तो कोई हर्ज नहीं। उन सब को यहीं बुला लो और इसी के सामने उनकी दुर्गत करो। उनके···में मिरचें भर दो, नंगी करके ··पर लगाओ!

कृष्णा तड़प उठी, "बन्द कर दो भींटिया, इन नर-पिशाचों के अत्याचार की कहानी। ऐसा मालूम पड़ता है कि न्याय-प्रिय प्रजावत्सल राजा का असली रूप यही है। मैं कहती हूँ कि सच्चा इतिहास यही है कि ये राजा राजा नहीं थे, प्रजा के हत्यारे थे।"

कृष्णा आवेश में काँपने लगी।

भींटिया ने कहा, "अब उस दानवी चन्द्रसिंह इन्सपेक्टर की तो दयालुता देखिए। वे फरमाने लगे, "मैं देख आया हूं कि तेरी औरत का दिल बड़ा कमजोर है और वह बीमार भी है। बवक्त तलाशी वह बेहोश हो गई थी, और उसे चक्कर आने लगे थे। अगर तू हमारा कहना नहीं मानेगा तो तेरे सामने ही उसकी दुर्दशा की जावेगी।

—उनके स्तनों में तेचाब लगाई जाएगी।

कृष्णा का सहज नारीत्व फुफ्कार उठा। वह क्रोध में लाल हो उठी, "अपनी माँ के क्यों नहीं लगाता?"

भींटिया पढ़ता ही गया।

—व्यभिचार, भयंकर, खूंखार अशखास उस पर छोड़े जायेंगे।

—तेरी तीन वर्ष वाली लड़की के भी मिरचें की जायेंगी।

"बड़ा कमीना था, जैसे उसके घर में माँ-बहिनें हैं ही नहीं, जरूर यह आदमी की नहीं, शैतान की औलाद है।"

—छः महीने वाले बच्चे को फर्श पर पटकवाऊँगा।

"राक्षस कहीं का।"

—आठ वर्ष वाले लड़के को औंधा लटकवाऊंगा, फिर साले हराम-जादे ··।

"बस, बस, झींटिया बन्द करो। इन राक्षसों की जलील बातों को सुनने से अच्छा है, कि इनको मैं ही गोली से उड़ा दूँ।"

झींटिया ने आवेश में आगे पढ़ा, "तुझे तभी होश आवेगा कि देश-भक्ति कैसे की थी और कैसे काँग्रेस मैन का बच्चा बना था, नहीं तो, मैं जैसे कहूँ, वैसा लिख दे।"

"झींटिया अब कृपा करके बन्द कर दो, नहीं तो गुस्से और दुःख के मारे मैं पागल हो जाऊँगी।"

झींटिया ने फाइल बन्द कर दी।

उसकी आँखों में आँसू छलक आये थे। झींटिया ने आँसू-भरी आँखों से कृष्णा की ओर देखा। वह उदास थी। वेदना के कारण उसके धनुषाकार लाल अधर काँप रहे थे।

"यदि तू पूरा हाल सुनती तो अपना सिर इन पत्थरों से फोड़ लेती। मनुष्य इतना नीच हो ही नहीं सकता, जितना यह है।"

"हाँ झींटिया, ये राजा लोग दैत्यराज्य हैं और ये अफसर लोग दैत्य। सच तो यह है कि मैं···मैं···। अच्छा झींटिया।" कृष्णा ने कोई भयंकर निर्णय करते-करते अपने को रोका। जैसे उसके अचेतन मन ने सावधान कर दिया हो। कपोल पर आई हुई अलक को हटाकर एक लम्बी आह छोड़ी, "आजकल तू है कैसा ?"

"अच्छा हूँ, मास्टर जी के साथ शहर जा रहा हूँ। मास्टरजी कहते हैं कि तू बड़ा होशियार है।" वह स्वयं अपनी आत्म-प्रशंसा कर उठा।

"अरे चींटी।" कृष्णा ने झपटकर झींटिया के गाल पर घूमती हुई चींटी को चुटकी में पकड़ ली, "यह चींटी कहाँ से लगा लाये।"

"चींटियाँ यहीं से लगती हैं।"

कृष्णा एकदम झेंप गई, "अभी भी तू वैसा ही शैतान है।"

"मास्टरजी तो ऐसा नहीं कहते।"

"वे तुम्हें चाहते हैं।"

"और तू···।" अनायास झींटिया के मुंह से इतना वाक्य निकल गया। कृष्णा कश्मीरी सेब की तरह लाल हो उठी। बड़ी मुश्किल से उसने कृष्णा की ओर देखा। दोनों शर्माये हुए थे।

"झींटिया, अब तो तू मुझसे घृणा नहीं करता है।"

"नहीं।" झींटिया के प्रण को झींटिया की शिष्टता ने तोड़ दिया।

"सच।"

"·······।"

कृष्णा ने उसका हाथ अपने हाथ में लेकर मुस्करा दिया, "झींटिया! बाप का दंड बेटी को देना भी तो न्याय नहीं। कसूर मेरे बाप ने किया, उसका फल उन्हें मिल रहा है। उनका फूल-सा बेटा गया, दिमाग गया, बड़ी बहिन कुंवारी रहकर उनकी छाती पर बैठी है। बुड्ढी भी हो गई है। मैं अब···।" वह कुछ देर रुककर बोली, "कौन-सा सुख है हमें, दुख ही तो दुख हैं। फिर तुम लोग क्यों हम जैसों से डाह करते हो?" उसका कंठ भर उठा।

"कृष्णा तू बहुत दुखी है।"

"हाँ।"

"क्यों? खाने को मिलता है, पहनने को मिलता है, फिर तुम्हें किस बात का दुख है?"

"लालकुंवर बाई सा को देख रहे हो, नारी का यह घुटता हुआ अहंकारी रूप तू ने कहीं देखा है?"

झींटिया चुप हो गया। उसके पास इसका उत्तर नहीं था। लालकुंवर तो दिन-प्रतिदिन कठोर और क्रूर होती जा रही है। क्या कृष्णा भी···?

"फिर कब मिलोगे?" कृष्णा ने उसके विचारों को भंग किया।

"अब तो मैं शहर जा रहा हूँ, आकर ही मिलूँगा।"

"इसके पहले एक दफे नहीं मिलोगे ?"

"मिल लूंगा, जाने से पहले।"

"भीटिया गर्दन नीची करके चल पड़ा।

कृष्णा उसे चाह-भरी दृष्टि से जब तक देखती रही तब तक वह उसकी आँखों से ओझल नहीं हो गया।

: ९ :

उसी रात मास्टर को तेज ज्वर आ गया। सिर की पीड़ा से मास्टर की आकुलता बढ़ती गई। आँखें लाल टमाटर जैसी हो गई। हरखा मास्टर के कहने पर उसके सिर में तेल-मालिश कर रही थी।

तारे आकाश में मद्धिम दीपकों की तरह चमक रहे थे। आकाश-गंगा अपने पूरे यौवन पर थी। सप्त-ऋषि मंडल अब भी छोटे-छोटे बच्चों का कुतूहल बना हुआ था। लौमड़ी की हुआँ-हुआँ कभी-कभी रात की शून्यता को भेदकर भय का सचार कर देती थी तो, कभी-कभी कुत्तों की भौं-भौं वातावरण में गूंजती हुई झींगुरों की प्रिय वाणी में एक अप्रिय धक्का लगा देती थी।

रात ढल रही थी।

हरखा अब भी अपने स्नेह-भरे हाथों से मालिश करती जा रही थी।

नीशिथ के होने का अन्दाजा आकाश में ढलती हुई संकेत-तारिका ने बताया।

मास्टर ने अपनी आँखें खोलीं।

दीये का प्रकाश मुस्करा पड़ा।

हरखा के नयन में सहस्त्र दीपों की ज्योति चमक उठी।

"अब जी कैसा है ?"

"दर्द कम हो गया है ।"

हरखा ने अपने नेत्र मूंदकर न जाने किस आराध्य को हाथ जोड़ दिये, स्वयं मास्टर भी नहीं समझ सका । उसके फड़कते हुए होंठ मास्टर के चिरायु व कुशलक्षेम की कामना कर रहे थे, ऐसा जान पड़ता था ।

"हरखा ! तू सोई क्यों नहीं ?" मास्टर ने उसके विचारों में अवरोद्ध उत्पन्न किया ।

"मुझे नींद नहीं आई ।"

"क्यों ?"

"ऐसे ही ।"

"किसी गैर के लिए इस तरह मरना अच्छा नहीं ।" मास्टर ने दार्शनिक की भाँति अपने सवाली का हृदय कुरेदा ।

"गैर, मास्टर जी क्या आप पराये हैं ? क्या आप मुझे अपना नहीं समझते ? क्या मैं आपकी नौकरानी भी नहीं हूँ ? बताइये मास्टर जी, कहिये न, मास्टर जी ।" हरखा का स्वर एक दम तेज हो गया । आँखें छलछला आईं । भावावेश में उसने मास्टर का हाथ अपने हाथ में ले लिया ।

मास्टर ने अपनी दृष्टि दीये की ज्योति पर जमा दी, "हरखा ! इस जन्म में चाहे मेरा-तेरा कोई नाता-रिश्ता न रहा हो पर पूर्व जन्म में जरूर तू मेरी निकट की रही होगी । फिर भी मेरे लिये इतना कष्ट उठाकर अपनी सेहत को खराब करना अच्छा नहीं और मैं भी तो शायद इसे पसन्द नहीं करता ।"

हरखा की गहरी तन्मयता ने उसके आँचल के पल्लू को सिर से सरका दिया । उसने उसको व्यवस्थित किया । दुःख उसके स्वर में फूल की सुगन्ध की तरह बस गया, "मैं जानती हूँ कि आप मेरे कोई भी नहीं होते । गरीब का क्या कोई होता भी है ?"

"ऐसा न कहो, हरखा ।"

"क्यों, मास्टर जी ?"

'मैं तो कहता हूँ कि मोह के बन्धन बहुत बुरे होते हैं। बंध जाने पर टूटते ही नहीं, और मेरा क्या भरोसा? दो-चार दिन में शहर चला जाऊँगा।"

"फिर अपनी इस नौकरानी को भूल जाओगे। फिर इतनी भी सुध-बुध नहीं लोगे कि हरखा जीती है या मर गई। उसे एक रोटी के लिये टके-टके की बात सुननी पड़ती है या नहीं, मास्टर जी! मुझे भी अपने संग शहर ले चलिये, मैं आपके पाँव पड़ती हूँ" और हरखा ने मास्टर के दोनों पाँव अपने हाथों से पकड़ लिये।

मास्टर चुप क्या, बुत हो गया।

वह सोचने लगा, "मनुष्य के दायरे इतने संकीर्ण न होते तो आज वह हरखा को पनाह जरूर दे देता। पर लोग उसकी पनाह को पनाह न समझकर हरखा और उसके सम्बन्ध में घृणित-विचार बनायेंगे। निराधार अटकल बाजियाँ लगाकर उसको पीड़ा पहुँचायेंगे" और मास्टर के सामने वही सपने वाला दैत्य क्रूर अट्टाहास कर उठा।

मास्टर विचलित हो गया। उसे सारा गाँव अपने पर थूकता हुआ नजर आया। उसे गाँव की सारी प्रकृति यह कहती हुई प्रतीत हुई कि यह गाँव में शिक्षा का प्रचार करने आया है, या गाँव की स्वच्छन्द बयार को प्रेम परिधि में बाँधने ?

मास्टर ने दयार्द्र होकर हरखा की ओर देखा और हरखा ने क्रोध में तमतमाकर जोर की फूँक से दीया बुझा दिया। घोर अन्धेरा छा गया।

: १० :

झींटिया सोच रहा था, "कल वह काका के हरे-भरे खेतों, सोंधी-सोंधी सुगन्ध वाली मिट्टी, और अपने जीवन की सबसे प्यारी वस्तु 'ढोलकी' को छोड़कर शहर चला जायेगा। फिर न तो यहाँ के बच्चे उन दोनों को साथ-साथ देखकर तालियाँ बजा-बजाकर कहेंगे कि किस-की ढोलकी किसका टम, चाल मेरी ढोलकी ढमाकढम और न ही गाँव की युवक व युवतियाँ डाह से जलेंगी। उसके कानों में बार-बार 'साधूड़े' के वे शब्द गूँज उठते थे, "जोड़ी क्या है, थूत्कारो डालने लायक (नजर लगे जैसी) ?" राधा और कृष्ण मालूम होते हैं। कल यह राधा-कृष्ण की जोड़ी बिछड़ जायगी। दूर बहुत दूर चला जायगा, राधा का कृष्ण, बेचारी राधा······।"

"झींटिया !" ढोलकी ने धीरे से पुकारा।

झोंपड़ी में अमावस जैसा अंधियारा था। घोर अन्धकार में झींटिया कल्पना के पंख पर उड़ा जा रहा था।

"इस घोर अंधकार में किसकी दो-पाँच कर रहे हो, जरा दीया जलाओ न।"

झींटिया ने दीया जलाया।

झोंपड़ी प्रकाश से जगमगा उठी।

"अरे ढोलकी, आज तुझे नींद नहीं आई ?"

"नहीं।"

"क्यूं ?"

"कल तू मुझे छोड़कर जा रहा है, न ?"

"हाँ जाना ही पड़ेगा, काका तो मना नहीं कर रहा है, यदि काका बरज दे (मना कर दे) तो मैं भी मास्टर जी को टाल दूं।"

"काका तो कहता है कि झींटिया शहर चला जायेगा तो मिनख बन जायगा।"

मैंने पूछा, "खेत का काम ?"

"उन्होंने उत्तर दिया, कोई मजूर रख लेंगे। पर झींटिया, शहर जाकर कुछ गुण अपने पल्ले बाँध लेगा तो हमारा आधा जुल्म खत्म हो जायगा।"

"तब तो जाना ही पड़ेगा।"

जा भले ही पर मुझे भूलना मत, देख, झींटिया, यदि तू बेगा लौट कर नहीं आया तो मैं तेरे पीछे गैली हो जाऊँगी।"

"थूक तेरी जबान से, ऐसे अणूते (अनुचित) बोल मत निकाला कर, मैं शहर से तेरे लिए अच्छी-अच्छी जिन्सें लाऊँगा। गले का सतलड़ा हार, पाँवों में पायल, आँखों का सूरमा।"

"ये सब क्यों ?" पुलक उठी ढोलकी।

"तू नहीं जानती ?"

"ऊँ हूँ।"

"झूठी कहीं की।"

"सच, भला मैं तेरे मन की बात कियाँ (कैसे) जानूं ?"

"तू तो कालेज की बात भी निकाल लेती है।"

"तेरे कहने से क्या ?"

"फिर बनती क्यों है ? क्या तू नहीं जानती कि तेरा-मेरा ब्याह होने वाला है ?" झींटिया ने लपक कर अपना हाथ उसकी ओर बढ़ाया उसने उसे रोकते हुए कहा, छिः छिः यह क्या कर करत हो ?" और वह शर्मा गई। उसके कपोल सुर्ख हो उठे। आँखें झुक गई। आँचल का पल्लू एक हाथ की अंगुली के चारों ओर लिपटने लगा।

"ढोलकी तू मेरे सागे ब्याह करने से राजी है ?"

ढोलकी ने हाँ के संकेत में सिर हिला दिया।

"पर आजकल तू मुझसे दूर-दूर क्यों रहत है ?"

भींटिया ने ढोलकी के दोनों हाथों को अपने हाथों में ले लिया। फिर ठोड़ी को पकड़ कर चार नजरें की, "लाग (प्रेम) लगी फिर लाज किसी ?"

ढोलकी उससे बिल्कुल लाल हो उठी।

"अच्छा, अब मैं जाती हूँ।" ढोलकी उठ गई। भींटिया ने उसे हाथ पकड़कर वापस बिठा दिया, "बैठ न, क्यों इतनी उतावल कर रही है। कल तो मैं शहर चला जाऊँगा।"

ढोलकी फिर बैठ गई।

लेकिन उसके बाद भींटिया कुछ भी नहीं बोल सका। दोनों कुछ देर तक दीये की लौ को एकटक देखते रहे फिर भींटिया ही ने खुद ही कहा, "अब तू जा, तू तो कुछ बोलती ही नहीं, फिर मैं क्या बोलूँ ?"

ढोलकी मुस्कराती हुई चलने लगी।

बाहर निकलती हुई ढोलकी का भींटिया ने पल्लू पकड़ा। ढोलकी की बड़ी-बड़ी आँखें भींटिया के चेहरे पर टिक गईं।

"पल्लू छोड़ दे। जी भरता नहीं है, क्या मुझ से ?"

भींटिया ने पल्लू छोड़ दिया, "ढोलकी ! कल मैं शहर चला जाऊँगा, आज तो जी भरकर देखने दे।"

ढोलकी ने एक लम्बी आह छोड़ दी।

उस रात ढोलकी सो न सकी। भींटिया की स्मृति और भविष्य की सुनहरी कल्पना उसकी आँखों के आगे मूर्त हो उठी। उसने सोचा "मेरा भींटिया शहर से बीकानेर का छैला बनकर आयेगा। ब्याह रचायेगा और ब्याह के बाद ......"

वह सोच ही रही थी कि बाहर काँसे की थाली बजने की झन्न-झन्नाहट सुनाई पड़ी।

ढोलकी ने अपने आप कहा, "किसी के लड़का हुआ है।"

"बधाई है, केशवराम की माँ, तेरे पोता हुआ।"

"बधाई, भाई तुम्हें ही है, भतीजे तो तेरे ही हुये हैं।"

"भतीजे ?"

"बेला (जुडवा) हुआ है।"

बाहर केशवराम की माँ और दाताराम बातचीत कर रहे थे। केशवराम की माँ पचास से ऊपर पार कर चुकी थी। किसी की परवाह किये वह गीगा-लोरी गा उठी। उसके पोपले मुंह से निकला कर्कश स्वर भी ढोलकी को आज बहुत प्रिय लग रहा था। नारी के हृदय की मातृत्व की भावना उसके अंग-अंग में उन्मादित कर रही थी।

बुढ़िया का कर्कश स्वर रात की नीरवता में गूंज रहा था।

"लोरी म्हारा रे गीगा लोरी"

हे तने दे सों हो, जतनोरा रे जाया, धाय राज लोरी

हो दाई—माई ने बेग बुलावों

हे इये गीगलीये रो नाजक जीव छुड़ावे हे सइयाँ। लोरी··· ··

हो जोशी जी ने बैग बुलावो

हे इये हालरिये री बेला तो हे लेरावो हे सइयां। लोरी···

हो भूवा बाई जी ने बैग बुलावो

हे इये गीगलीये रा हरख करावो हे सइयाँ।···लोरी···

हो दरजी जी ने बैग बुलावो

हे इये हालरीये रा आभडणियो हे सींवावो हे सइयाँ। लोरी···

हो इये सोनी जी ने बैग बुलावो···

हे इये गीगलीये रे हंसली कड़ा घड़ावो हे सइयां लोरी······

गीत में पूरा रूपक बंधा हुआ था। ढोलकी ने कल्पना की कि उसका विवाह हो चुका है। उसको भी आवधान (गर्भ) रह गया है। उसका काका बहुत ही खुश है। भींटियाँ शहर गया हुआ है। वह आया, उसके दो दिन पहले वह सुवाड़ती (जच्चा) हो जाती है। आधी रात को भींटिया चोर की तरह धीरे-धीरे उसकी कोठड़ी में आता है कोठड़ी में दीपक जल रहा है। धीमे से पुकारता है, "ढोलकी, ए ढोलकी।"

ढोलकी आँखें खोल देती है। उसके अधरों पर नारी के पूर्णत्व की हँसी नाच उठती है। उसका चेहरा गौरव से दीप्त हो उठता है।

"कितने हैं ?"

"दो।" ढोलकी अंगुली से बता देती है। झींटिया उसके समीप आ जाता है। दीये के प्रकाश में दोनों बच्चों के प्यारे-प्यारे चेहरे दीख रहे हैं। वह उनकी ओर हाथ बढ़ाता है तो ढोलकी सहसा सावधान हो जाती है।

"तू यहाँ क्यों आया है ?"

"तुझे देखने।"

"क्यों ?"

"जी नहीं माना।"

"शहरी बाबू होकर तू बड़ा निर्लज्ज हो गया है। जा जल्दी से भाग जा। कहीं कोई देख लेगा तो···छि छि···"

"नहीं, पहले उन दोनों को हाथ में लेकर दिखा दे।"

"मैं नहीं दिखाऊँगी।"

"अरे क्यों, धन धनियों का है, तुझे क्या डर है ?"

"दोनों चंदा और सूरज हैं।"

"सच।"

"तेरी नजर लग गई तो ?"

"बाप की नजर नहीं लगती।"

'नज़र बाप की क्या, जी-सोरे (राजी खुशी) की लग जाती है।"

"पर मैं नहीं दिखाती।"

"नहीं दिखाती, तो ले तुझे छूता हूँ।"

"ठहर-ठहर, ले देख।"

झींटिया पितृत्व की समस्त भावना लेकर अपने दोनों नन्हें-मुन्हे को देखता है। किसी चीज की चिंता किये बिना ही वह ढोलकी के गाल पर हल्की चप्पत लगा देता है, "तू बड़ी भागी है।"

ढोलकी सम्मान से बाग-बाग हो जाती है।

"दोनों को संभाल लेगी।"

"क्यों नहीं ?"

"मतलब ?"

"यह धरती के देव हैं शहरी बाबू, और धरती माता अपने देवों को कभी भी दुःखी नहीं देख सकती। वह स्वयं उन दोनों का पालन-पोषण कर लेगी।" विश्वास है ढोलकी के स्वर में।

"क्यों कर लेगी ?"

"तू नही जानता, कल ये दोनों बड़े होकर इस धरती की रखवाली करेंगे। इसे बोयेंगे, जोतेंगे और हरी-भरी करेंगे। अपने पोसने वालों को कोई भी मरने नहीं देता।" दार्शनिक के स्वर में वह कहती गई।

झीटिया ने देखा है कि गाँव की इस ग्वारिन में महान् आत्मा के दर्शन हो रहे है। उसे अपने बच्चों द्वारा भविष्य के कर्त्तव्य के पूरे होने की पूरी संभावना है।

मुर्गे ने बाँग दी तो ढोलकी का सपना भंग हो गया।

वह बिस्तरा छोड़ती हुई कह उठी, "ओह ! भोर हो गया ?"

: ११ :

मास्टर ने पुकारा, "हरखा।"

शब्द घर में गूंजकर पुनः उसके पास आ गया।

मास्टर उठा। सारा घर ढूंढ़ डाला पर हरखा का कोई पता नहीं लगा। मास्टर के हृदय पर आघात लगा। लेकिन उसने देखा कि जाने का सारा समान बंधा है। पानी की लोटड़ी से लेकर साग-रोटी भी बनाकर उसने एक कपड़े में बाँध दी है। उसने जोर से पुकारा, "मग्गू ! ······अरे ओ मग्गू।"

दस वर्ष का एक काला-कलूटा लड़का आकर मास्टर के सामने खड़ा हो गया।

"यह बिस्तरा और सामान उठा।" मास्टर की आज्ञा पाते ही उस काल-कलूटे लड़के ने अपने कंधे पर सामान उठा लिया।

मास्टर ने घर को सतृष्ण-दृष्टि से एक बार देखा। उसे महसूस हुआ, "दरवाजे पर हरखा खड़ी-खड़ी रो रही है। वह कह रही है, घर का दरवाजा बन्द न करना, विदा के दूसरे दिन मैं इसे बन्द करके चाबी घर वाली को दे आऊँगी।"

"मास्टर घर से बाहर निकला, "मग्गू ! चौधरी के घर चल।"

चौधरी ने पहले से ही बैलगाड़ी तैयार कर रखी थी। भींटिया ने अपना सारा सामान हिसाब से गाड़ी पर लगा लिया था। चौधरी और चौधाराइन के चेहरों पर रुआँसी झलक रही थी।

मास्टर के बैलगाड़ी के निकट पहुँचते ही सबने एक बार उनके चरण स्पर्श किये। मास्टर का हृदय सोहार्द से भर उठा। स्नेह-बन्धन के टूटने में अब थोड़े ही क्षण थे। मास्टर ने सबको हाथ जोड़े। चौधरी ने उसको बाहों भर लिया।

'बेटा, हमें भूल तो नहीं जाओगे ?"

'चाचा, कहीं अपने आपको भूला जाता है।"

चौधराइन बीच में ही रुद्धे स्वर में बोल उठी, "मेरे लाडेसर (लाडले) की भोलावण (जिम्मेदार) तुझे है बेटा, मैंने अपने भींटिये को अपनी आँखों से कभी भी दूर नहीं किया है।"

'आप चिन्ता न करें माता जी, मैं इसे अपने से अधिक सुखी रखूंगा।"

तब भींटिया ने चौधराइन के पाँव छूये। चौधराइन का हृदय फट-सा गया। इतनी कठोर दिलवाली औरत को इतनी कोमल आज तक किसी ने भी नहीं देखा था। सब उसे आश्चर्य से देखने लगे।

"बेटा, जल्दी पाछो (वापस) आइये, मैं तेरी अंखियों में प्राण लिए

अडीक (प्रतीक्षा) करूँगी।"

चौधरी ने आशीर्वाद दिया, "जुग-जुग जीवो, मेरे लाल, खूब यश और धन कमाओ और अपने माँ-बाप को सुख दो।"

गाड़ी चली।

बैलों की घंटियाँ वेदना का संगीत गुंजरित करती हुई बज उठीं।

थोड़ी दूर पर ढोलकी आँखों में सावन-भादों लिए हुये खड़ी थी, एक खेजड़े के नीचे।

उसके होंठ फड़क रहे थे जैसे वे उच्चारित कर रहे हैं।

[1]पीया परदेशों मत जाव, ऊभी मृगानैणी बरजै छै थोंने है।

पीया परदेशों मत जाव...

परदेश रा मोमला रे ढ़ोला,

चलना है विषम उजाड़।

परघर बासो होजी थे ले बोला मारू,

कूंण पूछेला थारी बात।

ऊभी मृगनैणी बरजै छै थोंने,

हे पीया परदेशों मत जाव...

बैलगाड़ी गाँव के किनारे हो गई तो भींटिया ने ढोलकी को अपने आँचल से आँसू पोंछते हुए अन्तिम बार देखा।

गाड़ी चल रही थी। धूल की धुंध पीछे छाकर रास्ता धुंधलाकर रही थी।

गाँव के अन्तिम छोर पर जहाँ भैरूँ जी का छोटा-सा मन्दिर था, वहाँ हरखा खड़ी थी।

उसने बड़ी गम्भीरता से मास्टर की ओर न देखते हुये भींटिया से विनती की, "भैरूँनाथ बाबा के दरसन कर लो, उनकी आशिश से मन के सारे मनोरथ पूरे होंगे।"

---

१ विरह सम्बन्धी लोक गीत। टेढ़े-मेढ़े रास्तों आदि का चित्रण है।

मास्टर और भींटिया ने हाथ जोड़कर अपने-अपने ललाट पर सिन्दूर लगाया।

मास्टर हरखा की ओर उन्मुख हुआ, "क्या तू मुझसे बहुत नाराज है।"

"नहीं मास्टरजी, एक चाकर आपने स्वामी से क्यों नाराज होगा।

मेरी चाकरी में कोई भूल रह गई हो तो माफ कर दीजिएगा।"

"तेरी सेवाओं को मैं कभी नहीं भूलूंगा।"

मास्टर का हृदय द्रवित हो गया।

हरखा ने उसके चरणों की धूल को अपने सिर लगा लिया।

गाड़ी चलती ही जा रही थी।

सूरज आकाश में तेज और तेज होकर चमक रहा था।

मास्टर और भींटिया दोनों इतने उदास थे कि जैसे किसी कठोर न उनके हृदय की उल्लास-उर्मियों के आगे कठोर चट्टान का टुकड़ा रख दिया हो।

: १२ :

साऊकार की मौत के बाद कारिन्दों ने अपनी मनमानी करनी आरम्भ की। पहले एक कसाई था, अब दस कसाई पैदा हो गए। सूने घर में जिस प्रकार चूहे नाचने लगते हैं, उसी प्रकार ठाकुर के पागलपन के कारण हर कारिन्दा अपनी-अपनी करने लगा। हालांकि इस पर लालकुंवर अपना कठोर शासन करती थी पर वह खुले-आम गाँव में घूम नहीं सकती थी। डेरे की मर्यादा का उसे हर समय ध्यान रखना पड़ता था।

एक दिन चौधरी ने लालकुंवर के सामने शिकायत की कि यदि

आपके कारिन्दे इस प्रकार जोर-जुल्म करते रहे तो हमें लाचार होकर आपकी शिकायत महाराज तक पहुँचानी होगी।

लालकुंवर इससे गाँव के किसानों के प्रति सहानुभूति के बजाय और घृणित हो उठी। बिगड़ गई। चौधरी को गुस्सा आ गया। उसकी दोनों मुट्ठियाँ बंध गईं, "अन्नदाता! आपके कारिन्दों ने तो हमें कुत्ते की रोटी समझ रखा है कि जब चाहा नोच लिया। हमारे पाँच-पाँच हजार की लागत के कुंड अपने कब्जे में कर लिए। चमारों और भंगियों के घर बेदखल कर लिए, पशुधन तो इस तरह गायब हो रहे हैं जिस तरह कपूर, रैयत पर यदि इस तरह के जुल्म होते रहें तो ठीक नहीं रहेगा।"

चौधरी की बात कृष्णा ने भी सुनी।

जब चौधरी सारा रोना रोकर चला गया तब दोनों बहिनों में ठन गई।

कृष्णा फुत्कार उठी, "यह अन्याय है बाई सा, आखिर हमारे कारिन्दों को क्या अधिकार है कि वे हमारी रियाया पर जोर-जुल्म करें, वह भी हमारे बिना हुक्म के। मैं सब की खाल उधेड़ दूंगी। मैं ये सब सहन नहीं कर सकती।"

बहिन ने बहिन की आँखों की द्रोह-भरी चिनगारियाँ पहचानी। गम्भीर होकर बड़पन से बोली, "जब बाड़ खेत को खाने लगती है तो उस खेत का सर्वनाश होकर ही रहता है। जब तू ही सुलगती हुई चिनगारियों में फूंक मारेगी तो आग भड़कने से रोकेगा कौन?"

'कृष्णकुंवर! शासन बिना हिंसा, बिना कोप और बिना आतंक के नहीं चलता है। प्रजा के प्रति प्रेम दिखाने का मतलब यह है कि राजा कमजोर है।"

"लेकिन आप भी महाराज की तरह निरंकुश बन जाएगी तो इन गरीबों का कौन रहेगा?"

"जिसका कोई नहीं होता है, उसका भगवान होता है।"

"और जिसका भगवान हो जाता है, उसको कोई मिटा नहीं सकता ?"

लालकुंवर को तर्क अच्छे नहीं लगे। उसने कुपित होकर कहा, "देखो कृष्णकुंवर, जागीरी के मामले में अपनी टाँग मत अड़ाया करो। अपने काम से मतलब रखो, समझी।"

"बाई सा।"

"मैंने कह दिया न, यह जागीर का मामला है, और तुम्हें जागीर के प्रबन्ध का क-ख-ग भी नहीं आता।"

"मैं केवल इतना जानती हूँ कि जुल्म की जड़ सदा हरी नहीं रहती, इसका परिणाम बहुत बुरा होगा।"

"परिणाम !" लालकुंवर बड़बड़ाती हुई चली गई।

कृष्णा जल-भुनकर खाक हो गई। उसके बोल तो यहाँ पानी के मोल बिकते। कोई उसे नहीं पूछता। उसके अधिकार की कोई कीमत नहीं। किसानों पर अत्याचार-पर-अत्याचार हो रहे हैं। जैसे देव वैसे पुजारी ! और कृष्णा के कानों में महाराज की थोथी घोषणा के शब्द और प्रजा के प्रति हृदय विह्वल करने वाली वाणी गूंज उठी, "मैं कभी स्वेच्छाचारी नहीं बनूंगा। धर्म-शास्त्रों में बताए हुए सच्चे राज धर्म का पालन करूंगा। उसमें प्रतिपादित सिद्धान्तों का महत्वपूर्ण नीति के रूप में पालन करूँगा। उन्होंने आठ सिद्धान्तों का निर्माण किया था। उनमें उस प्रजावत्सल महाराज का आठवाँ सिद्धान्त यह था—ऐसे उपकारी राजा का इन्तजाम हो, जो प्रजा की भलाई करने वाला है और प्रजा के लिए सन्तोषकारक है और जिसमें हर तरह से सोच-विचार करने के बाद राज्य की मौजूदा हालतों को ध्यान में रखते हुए राजसभा, लोकल बोर्ड, म्यूनिसिपैलिटियाँ और दूसरी ऐसी सभाओं की मार्फत, जिनमें चुनाव किया जाता है, राज के कामों में प्रजा को दिन ब दिन अधिक शामिल किया जाय।"

इतनी उदार घोषणा अँग्रेजों के पाँवों की जूती सहलाने वाले,

जागीरदार, जमींदार, पट्टेदार पोषक राजा जी ही कर सकते हैं। उसी समय जन-जाग्रति के अग्रदूत, चेतना के सजग प्रहरी, उन सभी देश-भक्तों की काल्पनिक मूर्तियाँ कृष्णा की आँखों के सामने नाच उठी और नाच उठी न्याय की चीखती, झूठ में तड़पती हुई आत्मायें। फिर अभियुक्तों को वर्षों का कठोर कारावास का दण्ड दे दिया गया।

कृष्ण के तन मन में हजारों चींटियों के काटने की मार्मिक पीड़ा हुई। भावावेश में वह व्याकुल हो उठी। उसकी आँखों के सामने एक विचित्र-सा दृश्य घूम उठा। एक ऊँची कोर के बड़े बर्तन में एक बड़ा बिच्छू जो अपने हिंस्त्र डंक के कारण निर्भय होकर घूम रहा है, उसने देखा निर्भय घूमते हुए बिच्छू में नरेश का प्रतिबिम्ब झलक रहा है। देखते देखते उस बिच्छू के आस-पास बहुत से छोटे बिच्छू घूमने लगते हैं और भूख की पीड़ा से वे बड़े बिच्छू पर टूट पड़ते हैं। थोड़े ही काल में कई छोटे बिच्छू एक बड़े बिच्छू को खा जाते हैं।

कृष्ण के चेहरे पर आकुलता के कारण श्वेदकण उभर आये। उसने अपनी आँखें बन्द कर लीं।

× × ×

गाँव का प्रबन्ध दिन ब दिन अराजकता की ओर बढ़ने लगा। लालकुँवर ने एक बार उसका नया प्रबन्ध और करना चाहा। कृष्णा की तबियत अब ऊबी हुई थी अतः वह वापस शहर चली गई, लालकुंवर के लाख मना करने पर भी। जब वह जा रही थी तब लालकुंवर को अपने डेरे की दीवारें टूटती हुई दीख पड़ी। आकाश का ध्रुव-तारा धरती पर आता हुआ जान पड़ा।

अपने आप से काफी विचार-विमर्श करने के बाद लालकुँवर ने अपने गाँव का प्रबन्ध चुपके से अपने रिश्तेदार ठाकुर भोपसिंह को सौंप दिया।

ठाकुर भोपसिंह की ओर से सुजानसिंह, उसका फुफेरा भाई गाँव आ गया।

: १३ :

शहर में आये भींटिया को आठ माह हो रहे थे।

इन आठ माह में उसने शहर की जनता में जो जागृति और उद्बोधन की लहर देखी जिससे उसे देश व प्रजा के स्वर्णिम भविष्य की सुन्दर कल्पना हो गई। उसे गीली लकड़ी के धुएं से घुटते हुए अपने यौवन में एक नए स्वस्थ-वातावरण का भास हुआ। अन्धकार से आवेष्टित परिधियों में सहस्त्र प्रकाश स्तम्भों की आभा के दर्शन, सूर्य किरणों की ज्योति, पवित्रता, सजलता एक विचित्र अनुभूति।

वह मास्टर से प्राय: सन्ध्या के समय आकर खादी भन्डार पर मिल लेता था जहाँ जन-नेताओं द्वारा जनता के प्रत्येक आन्दोलन का रूप बाँधा जाता था, जहाँ जनता के सेवक निरंकुश राजसत्ता व सामन्तशाही गढ़ की ईंट-ईंट उखाड़ने की योजनायें बनाया करते थे। वह खादी भन्डार में जन-नेताओं में श्री मंघाराम वैद्य, दाऊदयाल आचार्य, रघुवरदयाल गोयल, श्री लक्ष्मीदास स्वामी, गंगादास कौशिक, देवीदत्त पंत आदि को वह बड़ी श्रद्धा के साथ देखता था।

बाबू मुक्ताराम वकील को वह देवता के नाम से पुकारता था जिन्हें हिन्दू काशी विश्वविद्यालय के चाँसलर गंगासिंह ने निर्वासन दे दिया था। उनका क़सूर था कि उन्होंने जनता में चेतना फैलाने का दुस्साहस किया। उन्होंने वाचनालय-पुस्तकालयों की स्थापना की, उन्होंने देश के उत्थान के लिए जन-जीवन प्रेरक नाटक खेले।

इन सब से सर्वोपरि मानता था, अपने मास्टर जी को। अपने जीवन का सर्वस्व अर्पण करने वाले मास्टर के अनुकम्पा भरे करों की छाया में वह अपनी बुद्धि का विकास कर रहा था। वह हर रात मास्टर के घर जाता था, पढ़ता था लिखता था और देश की गतिविधि के बारे में

जानने का प्रयत्न किया करता था।

मास्टर उसे हिन्दी की परीक्षा में सम्मिलित कर रहे थे। पढ़ने की उसकी भी हार्दिक इच्छा थी और इसी हार्दिक लगन ने उस समय उसके मन से ढोलकी तक को भुला दिया था। वह अपने भविष्य में भूत की विस्मृति करने लगा।

रात हो गई।

सडकों पर सामन्तशाही तथा राज-सत्ता की तरह अन्तिम साँस लेती हुई सरकारी बत्तियाँ जल रही थीं। झींटिया चला जा रहा था। उसके पीछे एक आदमी बहुत दूर से चला आ रहा था। वह सी० आई० डी० था। जैसा उस समय प्रत्येक सजग व्यक्ति के पीछे राजसत्ता का भूत चिपका रहता था, फिर भला झींटिया कैसे बच सकता था ?

लगभग आठ बजे वह मास्टर जी के पास पहुँचा।

मास्टर जी ने एक लेख तैयार किया था। बीकानेर में प्रजा की हड्डियों पर राजा व सामन्तों के गढ़।" यह लेख वे लोक नायक राजपूताना हृदय सम्राट श्री जयनारायण व्यास द्वारा सम्पादित साप्ताहिक में प्रकाशनार्थ भेजना चाहता था। मास्टर ने लिखा था—

प्रजा की हड्डियों पर राजसत्ता के गढ़ बन तो जरूर सकते हैं पर उनके ठोसपन व अखंड की सम्भावना बहुत कम अंशों में है। बीकानेर की शासन सत्ता प्रजा के हित में शतांश भी नहीं है। जितने भी पूंजीपति हैं वे सब-के-सब प्रवास कर रहे हैं जिससे नगर का औद्योगिक विकास भी रुका हुआ है।

लेकिन इन पूंजीपतियों का सामन्तवाद से बहुत ही सुन्दर दुल्हे-दुल्हन वाला गठ-बन्धन है। प्रवास में लाखों रुपयों का उपार्जन करने के बाद ये पूंजीपति समय-समय पर नजर आते हैं। यह समय राजकीय उत्सव, त्यौहार और सगाई आदि का होता है। तब राजा लोग इनसे गले मिलते हैं। इन्हें अपनी स्वामी भक्त प्रजा कहते हैं और इन्हें राज दरबारों में बुलवाकर मुजरे में बहु-मात्रा में पूंजी लेकर

पाँवों में सोने के कड़े, छड़ी या राजा, अथवा ऐसी ही अन्य उपाधियाँ दे दिया करते हैं। सत्ताधारियों को पूँजीपतियों से पर्याप्त दौलत मिलने के बाद वे उक्त राजस्थानियों की दिलचस्पी बीकानेर के विकास की ओर उन्मुख नहीं कर पाते जिससे प्रजा की उन्नति रुकी हुई है और बेकारी का अन्त नहीं हो पा रहा है।

जनता में सम्वत् १९९८ की घोषणा की धारा ३२ और ३३ से बड़ा ही असन्तोष एवं राज्य की मनोवृत्ति के प्रति क्षोभ है जिसमें महाराजा ने स्वयं अपने श्री मुख से उमरावों, सामन्तों, पट्टेदारों, ठाकुरों व जागीरदारों को राज्य के थम्भे (खम्भे) और राज्य सिंहासन का आभूषण कहा। जनता का शोणित चूस-चूसकर कुन्दन की तरह लाल होकर तमतमाने वाले बीकानेर नरेश को यह कभी भी विस्मृति नहीं करना चाहिए कि राज्यसिंहासन के आभूषण मुट्ठी भर जागीरदार नहीं जनता की अजेय शक्ति है—किसान और मजदूर।

आगे उन्होंने उमरावों, सरदारों एवं ठाकुरों को सम्बोधित करते हुए उन्हें भी अपना फर्ज बताया कि वे :

—शाम धर्मीपण में कसर नहीं घालसी
—जिला वाश्‍रो कई सूं नहीं राखसी
—हुक्म अदूली नहीं करसी
—रैय्यत सू जुल्म जासती नहीं करसी
—गाँव आबाद राखसी
—रकब हिसाब लेवसी
—गाँव में चोर धाड़वी नहीं बसासी
—चोर धाड़वी आसी तो पकड़ाय देसी।

लेकिन जागीरदारों ने केवल उन्हीं कर्त्तव्यों का पालन किया जो राज्य-हित से सम्बन्धित हैं, शेष तो उनकी अपनी बात है। अतः अब गाँवों में अन्धेरगर्दी बढ़ती जा रही हैं, किसान त्रस्त हो रहे हैं, उनके खेत, उनके कुवें, ननके मौरूसी मकान सब-के-सब जागीरदारों की धांधली

के शिकार हुए जा रहे हैं, वे शहर आते हैं, महाराज से प्रार्थना करते हैं, अपराधियों को दंड देने की माँग करते हैं। कहते हैं कि गाँव की पुलिस उनकी बहू-बेटियों के साथ बलात्कार कर लेती हैं। जब जी चाहा उन्हें छेड़ लेती हैं। उनकी आवाज की कोई कीमत नहीं। जन-नेताओं के संगठन को पदाक्रान्त किया जा रहा है।

एक घोर अराजकता इस रियासत में फैल रही है।

भींटिया ने पूरे लेख को पढ़ महसूस किया कि उसके देश की जनता जाग रही है। मास्टर वास्तव में एक महान् क्रान्ति उसके देश में लायेगा। एक ऐसा जागरण उत्पन्न कर देगा जो देश के तमाम शोषित-पीड़ित इन्सानों में देश प्रेम व अत्याचार के विरोध की भावना जगायेगा।

: १४ :

चैत्र का महीना था।

भींटिया ने देखा कि फागुन के खत्म होते ही उसके पड़ोस की छोटी-छोटी कुँवारी लड़कियाँ सवेरे-सवेरे सूरज उगने के पहले छतों पर एकत्रित होकर गवर पूजती है। यह छोटी छोटी लड़कियाँ गणगौर की अरदासना में अपने भावी जीवन की सुन्दर कामना और राम जैसे वर की इच्छा करती हैं।

भींटिया प्रायः सवेरे-सवेरे जब प्राची में स्वर्णिम अधरोंवाली ऊषा अपने पूर्ण यौवन पर हुआ करती थी और पवन के शीतल झौंके प्राचीमात्र को प्रफुल्लित करते थे तब वह समीप वाले छत पर गणगौर-अर्चना में निमग्न लड़कियों के गीतों को बड़े ध्यान-मग्न होकर सुना करता था। उन गीतों को सुनकर उसके सामने ढोलकी का चाँद-सा मुखड़ा घूम जाता था। उसकी आँसू-भरी आँखें नाच उठती थीं जिनमें आकुलता

थी, प्रतीक्षा थी, प्रेम के बन्धन थे ।

तृतीया का चाँद उदास क्षितिज के भाल पर पतले धनुषाकार के रूप में चमकने लगा था ।

कल शहर में मेला होगा । भींटिया भी जाएगा । लोक-उत्सव में सम्मिलित होने की भावना का उद्भव स्वतः ही होता है ।

चार बजे से शहर का जन-समूह गढ़ की ओर मुड़ने लगा । स्त्रियों के झुण्ड-के-झुण्ड विभिन्न आँचल ओढ़े मधुर स्वर में गाती जा रही थीं। उनके स्वर में मादकता थी । लाल-पीले-नीले-आसमानी-गुलाबी कसूम्बी-हरे और उन पर चमकते हुए कनार के बेल-बूटे । उन सब में राजस्थानी रमणियों का अप्रितम सौंदर्य छलकते हुए आसव की भाँति । स्वर गूँज रहा था :

खेलण दो गणगोर गाढ़ा रे मारू । खेलण दो गणगोर ।
होजी म्हाँ ने गवरया रो घणो चाव, गाढ़ा मारू खेलण दो गणगोर
माथे रें महमंद, लाव गाढा रे मारू, माथे री फीण्या लाव
होजी म्हारे बिन्दली मौज लगाव, गाढ़ा रे मारू···

गीत में संगीत दे रही थी, उन रमणियों के पायल की झंकार । कदमों के साथ जो झनक की आवाज आती थी, वह था तबले का ठेका ।

गढ़ के समीप जो चौतीने का कुवाँ था । उस पर राजा जी की गवर अपने पूरे लश्करिये के साथ आने वाली थी । फौज, बैंड, राजवी सर-दार, सामन्त, उमराव, पट्टेदार, यहाँ तक कि राज्य की तवायफें भी ।

उस दिन जूनेगढ़ में प्रजा-प्रवेश खुला रहता था । भींटिया भी गया। प्रजा के अपार जन-समूह के साथ उसने भी गढ़ की भयंकर दीवारें देखीं जिनमें गुलाम अपना बचपन यौवन और बुढ़ापा बिना किसी विरोध के बिता देते हैं । उन्हें यह भी पता नहीं लगता कि वे कब पैदा हुये और कब मरे ?

गढ़ के मन्दिर में देव-पूजन हो रहा था ।

ठीक समय पर गवर माता की सवारी निकली । यह गवर भी

एतिहासिक महत्व रखती है।

इतिहास कहता है कि जोधपुर के राजा जोधे जी के वीर पुत्र राव बीका ने जाटों के इस देश को छीनकर बीकानेर राज्य की नींव डाली और बाद में जोधपुर और बीकानेर में आपसी वैमनस्य उत्पन्न हो गया। राम और कृष्ण की यह धर्म-पालक, वचनों पर अपना सर्वस्व विसर्जन करने वाली क्षत्रिय सन्तान धरती के सम्मोह में समस्त सम्बन्धों का परित्याग कर एक-दूसरे पर आक्रमण करने लगी।

यही वजह है कि हमारे राजा जी की गवर जोधपुर से लूटकर लाई गई है, महमूद गजनवी की भाँति। यदि वह इस्लाम धर्म का उपासक न होता तो क्या वह भगवान सोमनाथ की पवित्र मूर्ति को सीढ़ियों में थोड़े बदलता ? वह भी उसे अपनी कीर्ति का अखण्ड अस्त्र मानकर हर वर्ष एक पावन-पर्व की स्थापना कर देता।

इस गणगौर का पर्व ही कीर्ति का स्तम्भ है। जोधपुर के राजाओं के गर्व को चूर करने के लिए इसका हर वर्ष प्रदर्शन किया जाता है।

झींटिया गढ़ के बाहर आकर घूम रहा था।

छतों, सड़कों एवं पेड़ों पर भी जन-समूह था। वह पब्लिक-पार्क की चाहर-दीवारी पर बैठे जन-समूह का अवलोकन कर रहा था। देखता-देखता वह पार्क में घुस गया।

कई महीनों के बाद आज वह पार्क में आया था। गढ़ से निकले नगाड़े वाले ऊँट के बजते हुए नगाड़ों ने अपनी बेसुरी धड़क-धड़क धम् से एलान कर दिया था कि सवारी निकलने वाली है।

झींटिया को केवल प्रजा-वत्सल नरेन्द्र शिरोमणि के दर्शन करने थे। मेले को वह देख चुका था। गीतों को वह सुन ही चुका था। सौंदर्य का रसपान कर चुका था। बस, अब तो उसे देखना था, राजा जी के परम प्रतापी तेजस्वी मुखमण्डल को।

नगाड़े की बढ़ती हुई आवाज ने उसे चौकन्ना कर दिया। वह तेज कदम बढ़ाता हुआ कूवे की ओर चला। कूवे के सामने बड़ी भीड़ थी।

वहाँ झूले डाले हुए थे जिनमें स्त्री-पुरुष झूल रहे थे। बच्चे कागज के बने खिलौने खरीद रहे थे और ढोल (गुब्बारे) उड़ा रहे थे।

वह भी दर्शकों की पाँत में खड़ा हो गया।

सवारी आती रही। अन्त में हाथी के ओहदे पर सोने के सिंहासन पर राजा जी बैठे थे : एक व्यक्ति उन पर चवर डुला रहा था।

प्रजा गगन-भेदी नारों से राजा जी की जय-जयकार कर रही थी।

"घणी घणी खम्मा अन्नदाता नै !

खम्मा अन्नदाता नै !!

खम्मा अन्नदाता नै !!!

झींटिया ने 'खम्मा' नहीं किया।

वह भी तो जाट था, उसी की धरती पर अधिकार कर स्वामी बन जाने वाले राजाओं की वह जय नहीं बोल सकता। वह उस पृथ्वीनाथ के मंगल की कभी भी कामना नहीं कर सकता जो जनता के जागरण को अपनी निरंकुशता से समाप्त करना चाहता है। जिसका धर्म इतना संकुचित हो कि केवल उसमें अपने आपको ही पनपने की शक्ति हो, वह भी अत्याचार के सहारे। यह उस राजा को केवल बोली का मीठा और दिल का कड़वा ही कह सकता है।

उसने राजा जी को सिर नहीं नवाया। चुपचाप वह वहाँ से हटकर थोड़ी दूर एक पेड़ के नीचे आकर खड़ा हो गया।

चौतीने कुवे के पानी से गवर-माता ने अपनी छः माह की प्यास बुझाई। इसके बाद फिर गवर माता की जय-जयकार के बाद सवारी ने पुनः गढ़ की ओर प्रस्थान किया।

जोर का हल्ला-गुल्ला हुआ।

झींटिया ने देखा—बहुत सी नारियों का झुण्ड जो अपने सिर पर गवर माताओं की लकड़ी की बनी मूर्तियाँ लिए हुए है, इस मुद्रा में खड़ी हैं, जैसे वह दौड़ करेंगी।"

हुआ भी ऐसा ही।

उस भुण्ड की तमाम स्त्रियाँ सिर पर गवर माता को उठाकर भागीं। भीटिया हँस पड़ा। उसके साथ भीड़ भी भागती गई। आवाज आ रही थी, 'रास्ता छोड़ दो, अरे भाई हट न···छोड़ दो रास्ता, हट जा, ए छोकरी ··।"

भींटिया मन-ही-मन मुस्कराता सुस्ताने के लिए वापस पार्क में आकर बैठ गया।

दूब की सौंधी-सौंधी सुगंध आ रही थी। बेर की बोटियों की खड़-खड़ाहट भी धीमे-धीमे गूंज रही थी। कुछ व्यक्ति इक्के-दुक्के पार्क में बैठे थे।

एकाएक भीटिया के सामने वाली दूब के आगे एक मोटर आकर रुकी। भीटिया की आँखें उस ओर उठ गईं।

एक प्रौढ़-महिला जिसके रहन-सहन पर पश्चिम-पूर्व का सुन्दर मिश्रण था, हाथ में छोटा-सा टोमी कुत्ता लिये उतरी। उसके साथ एक और अनुपम सौन्दर्य सादगी का आवरण ओढ़े उतरा।

युवक हृदय भीटिया के मन में उस युवती के चेहरे को देखने की तीव्र लालसा जागी। उसके सुगठित अंग-प्रत्यंग को देखकर उसने यह तो अनुमान तुरन्त लगा लिया था कि युवती सुन्दर अवश्य है। वह बेचैनी से उस ओर आँखें जमाये हुये था कि उस युवती ने अपनी मुद्रा बदली।

भींटिया सन्न रह गया "अरे, यह तो कृष्णकुंवर है।"

पर कृष्णा ने उस ओर नहीं देखा। अब वह कृष्णा को अपनी ओर आकर्षित करने के लिये एक बार उठा और अपनी धोती से काँटा निकालने का झूठा बहाना कर वापस बैठ गया। कृष्णा ने तो भी उसकी ओर नहीं देखा। वह बड़ा निराश हुआ, "क्यों नहीं, कृष्णा मेरी ओर देख रही है ?"

तब कृष्णा ने उसकी ओर देखा। बदले हुये भींटिया को पहचानने में देरी जरूर हुई पर यह सत्य था कि वह उसे नहीं भूली थी। भूल

भी कैसे सकती थी ? जीवन में विरसता के सिवाय रखा ही क्या था उसके सरसता झींटिया के साथ ही तो थी।

इसलिए कृष्णा झूम.उठी। पुकारा, "झींटिया !"

झींटिया के चेहरे पर प्रसन्नता के सहस्त्रों सूरज चमक उठे।

'आओ, न।"

अब उसकी बुआ का ध्यान अपनी भतीजी पर गया। उसके फूले हुए नथुने और अधिक फूल गये। भृकुटियाँ थोड़ी-थोड़ी तन गईं।

"यह कौन है ?"

"बुआजी, यह झींटिया है ?"

"झींटिया !" उसने घृणा से मुँह बिचकाया, "यह क्या जानवरों जैसा नाम है ?"

"बुआजी, यह तो हम इसे चिढ़ाने के लिए कहती है।" झींटिया उसके सन्निकट आ गया था, "वैसे इसका नाम सूरज है, सूरज, क्यों झींटिया ?"

झींटिया इतनी देर में कुछ सोच-समझ नहीं पाया। कह उठा, 'हाँ।'

"सूरज, तब तो नाम सुन्दर है, मुझे हर गन्दी चीज से घृणा है। चाहे वह नाम हो अथवा वह कोई चीज।" बुआ ने अपने हृदय के भाव व्यक्त किए।

झींटिया किंचित उपहास से बोला, "अगर कोई आदमी काला हो तो ?"

"मैं उससे भी घृणा करती हूँ।" तमककर बुआ ने कहा।

'अगर आप खुद काली होती तो...?"

"तो मैं अपने आपसे घृणा करती।"

"देखिए बुआजी, यह बात मैं मानने को तैयार नहीं हूँ। हर आदमी अपने से तभी घृणा करता है जब उसने अपनी आत्मा को धोखा दिया हो, उससे अनुचित छल किया हो अन्यथा काले-गोरे रंग से कोई अपने आपसे घृणा नहीं करता। अपने आपसे प्रेम करना हमें प्रकृति

आरम्भ से ही सिखा देती है। क्या काले अपने सौन्दर्य पर मुग्ध नहीं होते ? कोयल काली होती है, फिर भी उसे अपने सौन्दर्य पर दंभ है। रंग घृणा का उद्‌गम नहीं।"

कृष्णा विमोहित हो उठी। झींटिया का एक-एक शब्द उसकी हर साँस के साथ मस्तिष्क में वश कर नशा-सा कर रहा था। दंभ की हल्की रेखायें उसके सुषमा की वर्षा करने वाले मुख पर दौड़ रही थीं।

बुआ ने एक बार गौर से झींटिया को सिर से पाँव तक देखा—"पाँव में सादी-सी चप्पल, मोटी-सी धोती, उस पर महीन कपड़े का कुर्त्ता, सलोना मुख, बंगला परम्परा के कटे बाल। सुघड़ युवक, आकर्षक नाक-नक्शे।"

"स्वभाव के बड़े तेज हो ?" बुआ ने पूछा।

"शहर की हवा ही ऐसी है। बड़ी-बड़ी विचित्र खोपड़ियों से मिलने का अवसर मिलता है न, कोई ज्यादा बोलता है तो कोई कम, कोई एक दूसरे की शिकायत करना ही अपना धर्म समझता है तो कोई मानव-मात्र की सेवा करना ही अपना परम-कर्त्तव्य मानता है। मनुष्य ऐसे वातावरण में रहकर यदि स्वभाव का तेज न बने तो फिर मैं आसानी से कह सकता हूँ कि उसमें मनुष्य की साधारण प्रतिभा भी नहीं है।"

कृष्णा ने भी अपना मौन तोड़ा, "झींटिया।"

"कृष्णा, तुम तो सभ्य-समाज में रहने वाली हो, कम-से-कम ऐसे भद्रजन को अच्छे नाम से तो पुकारा करो।" बुआ ने कृष्णा को टोका।

'सूरज, इतने महीनों से यहाँ रह रहे हो, और हमें खबर तक नहीं।" कृष्णा के स्वर में उलाहना था।

झींटिया बेरुखी की हँसी हँस पड़ा, "खबर देने की आवश्यकता ही नहीं समझी, सच तो यह है कि मुझे आपका पता ही मालूम नहीं था।"

कृष्णा का चेहरा स्याह हो गया, "अब तो पता ले लो।"

"हाँ-हाँ, ले लो। हमारे डेरे आया करो, तुम तो बड़े दिलचस्प

आदमी हो।" बुआ ने अपनी छोटी-छोटी कबूतरी-सी गोल आँखें मटका कर कहा।

"आऊँगा।"

बुआ ने झींटिया को पता दे दिया।

कृष्णा तुरन्त झींटिया के समीप गई, "सूरज!"

"नाम क्यों बदलती हो, कृष्णा?"

झींटिया की आँखों में भावुकता तैर उठी। कृष्णा के स्वर में दबा हुआ दुःख था, "सूरज अच्छा नाम है? फिर बुआ को भी पसन्द है। देखो सूरज, मैंने लालकुंवर से झगड़ाकर लिया। अब मैं शायद वहाँ जाऊँगी ही नहीं। वह तो दिन-प्रतिदिन मनुष्यता के परे होती जा रही है।"

"फिर भी वह तुम्हारा घर है और क्या घर कभी छोड़ा जाता है?" उसकी आँखों में प्रश्न बोल उठा।

"मुझे अत्याचार पसन्द नहीं। मनुष्य-मनुष्य का गुलाम बनकर रहे, यह मेरा हृदय सहन नहीं कर सकता। झूठी मान और शान के पीछे अपने महत्त्वपूर्ण जीवन का बलिदान मेरा अन्तःकरण स्वीकार नहीं कर सकता। मैं अपनी समस्त इच्छाओं व लालसाओं को कुंठित होते नहीं देख सकती। लालकुंवर की तरह जीवन को डेरे की मर्यादित दीवारों में घुटाकर, झूठ अहम् के चक्कर में अपनी कोमल भावनाओं को नृशंस नहीं बना सकती। विशेषत: डेरे की मर्यादित दीवारें मर्यादा की रक्षा थोड़े ही करती हैं बल्कि वे तो मर्यादा का शोषण करती हैं।" कृष्णा लगातार कहे जा रही थी। बुआ बाग में खिले हजारे के पीले फूल से खेलने का प्रयास कर रही थी। उसकी कोमल पंखुड़ियों पर अपनी मोटी किन्तु मुलायम अंगुलियाँ फेर रही थी।

"तो तुम्हें बनावट की जिन्दगी पसन्द नहीं है।" झींटिया उसकी आँखों की गहराई को पहचान रहा था।

"नहीं।"

"फिर तुम्हें हम जैसे गरीबों के जीवन के जीवट को ग्रहण करना चाहिए। तुम लोगों की हेय-दृष्टि, असहिष्णु, प्रवृति, अनुचित-व्यवहार भी हमारे जावन को नहीं छीन सकता। कृष्णा! सच तो यह है कि हमारा और तुम्हारा परस्पर मेल सम्भव नहीं।"

कृष्णा चौंक उठी, "क्या कहा ?"

"मजदूर और मालिक, किसान और ठाकुर का मेल सम्भव नहीं। हराम की रोटियाँ खाने वाला हाँड को तोड़कर मेहनत-मजदूरी नहीं कर सकता। मास्टरजी कहते थे—"ये जागीरदार हर तरह से किसानों के शोषण के तरीके अपनाते हैं जिससे उनका आर्थिक विकास न हो। वे अपनी शक्ति से उनके संगठन व आन्दोलन को कुचलने की भरसक चेष्टा करते हैं ताकि वे एकता की अजेय शक्ति में एक जूट न हों। जब वे इन दो चेष्टाओं में विफल हो जाते हैं तो वे खेतिहरों के संगठन को छिन्न-भिन्न करने में अपनी बुद्धि दौड़ाते हैं। यह बुद्धि हममें फूट के बीज बोने का प्रयास करती है। हर वर्तमान खेतिहरों के लिए शुभ भले ही न हो पर आने वाला कल निश्चित रूप से इन्हीं खेतिहरों का है। जिस प्रकार आज हम सत्याग्रह व आन्दोलन करते हैं उसी प्रकार उस समय ये जागीरदार अपने सड़े-गले तत्वों को पुर्नजीवित करने के लिए इन्हीं रास्तों को अपनायेंगे। उस सड़ी लाश को जिन्हें दरअसल दफना ही देना चाहिये, लेकर घूमेंगे। अपनी शक्तियों को विकास की ओर न लगाकर नाश की ओर प्रेरित करेंगे। मतलब यह है कि इनका भविष्य अन्धकारमय है।"

'कृष्णा! मास्टरजी के कथन में उनका महान विश्वास झलकता है, चरम आस्था के दर्शन होते हैं इसलिए यह सत्य है।"

कृष्णा सोचने लगी, "यह गाँव का झींटिया कितना बदल गया? भोला-भाला, नटखट, अनपढ़ यह झींटिया जीवन के विषम-से-विषम पहलू से परिचित होकर नये युग के आगमन के आमन्त्रण में शरीक हो रहा है।" वह अपने भावों को अन्तर में छिपा न सकी। उन्हें प्रकट कर

दिया, "तू कितना बदल गया है ?"

"और तू भी तो ।"

कृष्णा की आँखें शर्म से झुक गईं। रुकती-रुकती पूछ बैठी, "कल जरूर आओगे ?"

बुआ आ गई थी। कृष्णा को पकड़कर बोली, "यह भाग, थोड़े ही रहा है, कल डेरे आ जायेगा, चलो।"

कृष्णा के मन पर बोझ-सा पड़ गया।

: १५ :

चौधरी ने ढोलकी के सिर पर हाथ फेरकर सांत्वना-भरे स्वर में आश्वासन दिया, 'झींटिया, अगले सावन तक आ जाएगा, तू मुंह न उतरा, बेटा ! तेरा धणी जाट गँवार न होकर समझदार हो इसलिये तो उसे शहर भेजा है और बारह महीने तो अंगुलियों की रेख पर गिन-कर बिताये जा सकते हैं।"

ढोलकी का रोना बन्द नहीं हुआ। वियोग की घड़ियाँ उसे पहाड़-सी लगने लगीं। एक साल के तीन सौ पैंसठ दिन गिनने के लिये उसने अपने घर की दीवार पर काली लकीरें खींचनी शुरू कर दीं। हर रोज भोर के तारे को श्रद्धा से हाथ जोड़कर कोयले की खींची लकीरों में वह एक लकीर और जोड़ दिया करती थी। जब वह तीस हो जातीं तो अपनी अंगुलियों की एक रेख पर दूसरे हाथ की अंगुली रखकर खुश हो जाया करती थी कि एक माह तो बीत गया। उस समय उसके चेहरे पर आशा के भाव चमक उठते थे।

और जब बारह माह बीत गए और झींटिया नहीं आया तो वह रो उठी। अपनी माँ की गोद में सिर छुपाकर वह इतनी रोई कि माँ का

दिल भी भर उठा।

"बेटा, इस तरह जी को कच्चा नहीं किया जाता है, झींटिया पढ़ने-लिखने गया है। भूरसिंह कह रहा था कि वह खद्दर पहनने वालों के साथ रहता है, कभी उसकी जान पर आ बनेगी।"

माँ को जो नहीं कहना था, वह उसके भोलेपन ने कह दिया।

गाँव का निश्छल हृदय सत्य पर कभी भी आवरण नहीं डाल सकता है। फिर ढोलकी की माँ भी तो उस मिट्टी की बनी हुई थी जिस मिट्टी ने सदैव सत्य का दिया जलाकर अपने जीवन को प्रकाशित किया है।

ढोलकी चिहुँक उठी, "फिर माँ झींटिये को बुला लो।"

"पगली हो गई है, तेरा काका कहता था कि कारिन्दा बकता है, वह डरता है कि गाँव में पढ़े-लिखे हो जायेंगे तो वे चोरी-लूट आसानी से नहीं कर सकेंगे।"

ढोलकी को न जाने माँ की बात से ढाढस क्यों नहीं हुआ।

मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति की भाँति उसे अच्छे पर कम भरोसा हुआ और बुरे पर अधिक। अर्ध विक्षिप्त-सी अवस्था उसकी हो गई। रात को वह घास के ऊँचे ढेर पर बैठी-बैठी एक तड़पती हुई रागिनी गा रही थी :

काली-काली काजलिये री रेख रे
भूरोड़े भुजों पे चमके बिजली
जुग जीओ म्हारी मूमल हालो नी लश्करिये ढोले 'रे देश···

राजस्थान का वह अमर प्रेम-लोक गीत संसार की प्रेम कहानियों में अपना विशेष महत्त्व रखता है। विरह, मिलन, हास्य-रोदन से भाव-पूर्ण यह गीत उस विरहणी मूमल की याद दिलाता है जिसने आजीवन विरहानल में सुलग कर मृत्यु का निमन्त्रण स्वीकार कर लिया था।

ढोलकी के नयनों के आगे कहानी साकार हो उठी। उसकी अनुभूति झींटिया के बिछोह में मूमल-सी हो गई।

"गढ़ में मूमल सज-संवर के अपने प्रेमी राजा महेन्द्र की प्रतीक्षा में

बैठी है। केसर-सा रंग दीयों के प्रखर प्रकाश में उसके सौन्दर्य को दृष्टि-प्रिय बना रहा है।

राजा महेन्द्र हर रात आता है और सुबह ऊँट पर सवार होकर पुनः चला जाता है।

दिन बीत रहे हैं—

एक दिन मूमल की छोटी बहन सूमल अपने बहिन के प्रेमी को देखने का हठ कर लेती है।

उपहास के लिए अपनी बहिन को मर्दाने वेष में ढोली के कपड़े पहना देती है। दोनों बहिनें भरे हृदय से प्रतीक्षा करती हैं—राजा महेन्द्र की।

उस दिन वह सदैव की अपेक्षा देरी से आता है।

छोटी बहिन बड़ी बहिन की जाँघ का सम्बल लेकर सो जाती है।

राजा महेन्द्र शीघ्रता में सन्देह का शिकार हो जाता है और मूमल के पवित्र प्रेम के कलंक की छाया देखकर बिना कुछ कहे जिस पाँव आता है उसी पाँव लौट जाता है।

फिर वह निर्मोही कभी भी नहीं आता।

विरहिणी मूमल आजीवन राजा महेन्द्र की प्रतीक्षा में व्यतीत कर देती है। कहते हैं, मूमल अपने पवित्र-प्रेम के लिये जीवन भर अंगारे-सी सुलगती रही।

उसकी याद को अमर करने के लिये यह गीत रचा गया है। जब कोई प्रेमिका अपने प्रेमी के विछोह में बेचैन होती है तो इसी गीत को गुन गुनाकर धैर्य ले लिया करती है।"

ढोलकी बड़बड़ा उठी, 'क्या झींटिया नहीं आएगा ?"

उसका अन्तर बोल उठा, "वह राजा महेन्द्र थोड़े ही है।"

तभी तोती हड़बड़ाती हुई ढोलकी के घर में काका-काका पुकारती हुई आई, "काका, काका ! गजब हो गया।"

"क्या हो गया ?" ढोलकी की तन्द्रा टूटी।

"गैले ने भूरसिंह का सिर फोड़ दिया।"

"किसका सिर फोड़ दिया।" चौधरी ने घर से बाहर निकलकर पूछा।

"भूरसिंह का।"

"किसने ?"

"गैले ने ?"

"क्यों ?"

"उसने हरखा बहिन की इज्जत लूटनी चाही।"

ढोलकी को गुस्सा आ गया, "गैले ने उसे जान से क्यों नहीं मार दिया ? वह कमीना जान जाता कि दूजों की बहू-बेटियों की इज्जत लूटने का क्या फल मिलता है ?"

चौधरी ने गम्भीर होकर कहा, "सुजानसिंह के अत्याचार दिन पर दिन बढ़ रहे हैं। भूरसिंह उसका दायाँ हाथ बना हुआ है। मैं शीघ्र ही शहर जाऊँगा। अब बिना प्रजा-परिषद की सहायता के उद्धार सम्भव नहीं।"

"हरखा कहाँ है ?" ढोलकी ने तोती का हाथ पकड़ लिया।

"अपने घर में।"

"चल, उसे धीरज बँधा आए।"

दोनों जनी उधर चलीं।

हरखा टूटे-फूटे लाल मिट्टी के घर में जमीन पर पड़ी-पड़ी रो कर निढाल हो रही थी। जब ढोलकी और तोती घर में घुसीं तो हरखा और जोर-शोर से रोने लगी।

ढोलकी ने पहले-पहल साँत्वना दी और बाद में अकड़कर फटे बाँस-सी फट पड़ी, "तेरे हाथों में कौन-सी मेंहदी लगी थी, हरामजादे के पोताल (अंडकोषों) पकड़कर चित्त क्यों नहीं कर दिया ? मर भी जाता तो पिंड छूट जाता। ये लातों के पुजारी इस तरह नहीं मानेंगे। ये हमारे सेर की मारेंगे तो हम पंसेरी(पाँच सेर) की लगायेंगे, तभी इनकी अक्ल ठिकाने आयेगी।"

तोती ने ढोलकी के कथन की पुष्टी की, "उस वर्णशंकर ने एक बार मुझसे भी छेड़खानी कर ली। मैंने तमककर कहा, "ओ कुत्ते के बच्चे ! मूँछ का चावल रहना दोरा (कठिन) हो जायगा। दोनों मूँछों को पकड़ कर उखाड़ फेकूँगी। मेरा नाम तोती है, तोती, उस दिन से मुझे तो वह अपनी माँ-बहिन समझने लगा। नजर उठाकर देखता तक नहीं है।"

पर हरखा किसी और ही विचार में खोई हुई थी। उसका मन पंछी कहीं और ही भटक रहा था। उसे ढोलकी और तोती की बातें रुचिकर नहीं लग रही थीं। उसकी आँखों के सम्मुख मास्टर का सौम्य मुख-मंडल घूम रहा था। निर्दोष व अलौकिक मुख-मंडल।

जब ढोलकी और तोती बिलकुल चुप हो गईं तो हरखा के हृदय-उद्गार एकाएक फट पड़े, "न मास्टर मुझे छोड़कर जाता और न मेरी यह दुर्गति होती।"

ढोलकी को हरखा की नादानी पर गुस्सा आ गया, "तू तो बावली हो गई है मास्टर जी, तेरी चिन्ता करने वाले ही कौन हैं ? तू ठहरी बाल-विधवा और वह ठहरा अपना पावणा (मेहमान) पावणा तो कभी-न-कभी जायगा ही। फिर तू उसे ओलमो (उलाहना) क्यों देती है ? तेरा रखवाला तो अब भगवान ही है।"

: १६ :

"हमें अब संसार में कोई दुख सुनने वाला नजर नहीं आता। कहाँ जायें, किसे सुनायें ?···महाराज साहब ने भी अपने कान मूँद लिये हैं। वह भी अपने भाई-बेटों की सुनते हैं, हमारी क्यों सुनने लगे ? अगर संसार में कहीं ईश्वर है तो सुनेगा वरना खैर है।"

कांगड़-काण्ड के पीड़ित-शोषित किसान आँखों में अश्रु भरकर हिच-कियों के साथ अपने दुख की कहानी प्रजा-परिषद के कार्यकर्ताओं को सुना रहे थे। उनकी वाणी में युगों से शापित-दुखित इन्सानों का वह दर्द था जो भूकम्प बनने की ओर बढ़ रहा था।

आसनाथ जोगी बोला, "ठाकुर के आदमी हमारे पर खुल्लमखुल्ला अत्याचार कर रहे हैं, वे हमारी औरत तक को घसीट कर डेरे में ले जाते हैं।

गाँव वालों को इतनी बेरहमी से पीटते हैं कि वे अच्छी तरह रो भी नहीं सकते, तुरन्त अचेत हो जाते हैं।" बखसाराम ने कहा।

गोमाराम भड़क उठा, ना मालूम यह किस चमार से उत्पन्न हुये हैं, सेराराम की तो जनेऊ तक तोड़ डाली।"

चुनाराम अब तक बिलकुल मौन बैठा था। उसकी झील-सी गहरी आँखों में वेदना का तूफान-सा उठ रहा था "सच तो यह है कि पंडितजी जब तक इनका विरोध नहीं किया जायेगा, पत्थर का जवाब पत्थर से नहीं दिया जायेगा तब तक इनके नंगे जुल्म बाना नहीं पहनगे।... चरखाराम और गणपत को इन लोगों ने भगवान की मूर्ति की तरह नंगा करके २४ घण्टे तक पीटा। अन्त में वे मूर्ति की तरह ही निर्जीव पाषाण हो गये।"

मास्टर ने उन्हें आश्वासन दिया। आप चिंता न करें, मैं शीघ्र ही चंद कार्यकर्ताओं को काँगड़ भेजकर मामले की तहकीकात कराऊँगा। अत्याचार और अन्याय चाँद-सूरज नहीं बन सकते। वे तो तारे हैं जो चाँद के छुप जाने पर टिमटिमाने लगते हैं और उसके उदय होते ही लुप्त हो जाते हैं। चाँद और सूरज तो जनता की आवाज और संगठन है। मेरे किसान भाइयो! जब जनता के चाँद और सूरज उदय होते हैं, तो घने अन्धकार से घिरा आकाश भी अलौकिक प्रकाश से जगमगा उठता है। आपको अब पर्दे में नहीं रहना होगा। आपके चाँद और सूरज को उदय होकर इन तारों को मिटाना होगा। ये तारे भी भोर के तारे

हैं, राख की पर्तों से बुझते हुये अंगारे, बिना तेल के काँपते हुये दीये, तुम्हारा उदय ही इनका अस्त है।"

मास्टरजी की वाणी में सरस्वती का वास था, जादू का असर था बेचैन, पीड़ित, निराश किसानों में आशा की लहर दौड़ उठी। लहर से तरंगित उत्साह की उमंग ने उनके चेहरों पर एक अदम्य साहस आलोकित कर दिया। उन सबके मन के तार जैसे झनझना उठे "जाग, ओ किसान जाग! देख तेरे हरे-भरे खेतों में आग लग चुकी है।...... आग।"

मास्टर ने देखा काँगड़ का गरीब, सुसप्त, संगठन हीन किसान अब जाग रहा है। अत्याचार उन भूखे पेटों को संगठन के एक तार में पिरो रहा है।

मास्टर उच्च स्वर में बोला, "तुम पृथ्वी के चाँद-सूरज हो, संसार का सारा अस्तित्व हँसिये और हथौड़ में है। यदि सूरज हँसिये से काम लेना बन्द कर देगा तो ये राजाओं के तलुवे सहलाने वाले चाकर धरती पर बिना पानी की मछली की तरह तड़पते हुये नजर आयेंगे। वे यह कहना सर्वथा भूल जायेंगे, बकरियाँ मरते समय मिमियाती हैं, मगर माँस खाने वाला मिमियाने की परवाह नहीं करता। इनके हिंस्त्र जबड़ों को बकरी का नहीं, आदमी के माँस का स्वाद लग चुका है, अब इनके इन जबड़ों का जब तक समूल नाश नहीं होगा तब तक ये अपनी नीच प्रवृति का परित्याग नहीं करेंगे।"

मास्टर ने बाहर निकलते हुये किसानों को अन्तिम आश्वासन दिया, "आप चिंता न करें, मैं शीघ्र ही एक शिष्ट मंडल गाँव भेजूंगा। हाथ पर हाथ धरे नहीं रहूँगा, संघर्ष किया जायगा—जनता की अजेय शक्ति के साथ।"

दु:ख-दर्द की कथा काँगड़-कांड की बहुत ही हृदय-विदारक थी। ठाकुर गोपसिंह के अत्याचारों ने जब नंगा रूप धारण किया और गढ़ की चाहर-दीवारी के वैभव-विलास में निमग्न राजाजी ने अपने स` पुत्रों

की बात न सुनकर प्रजा के भक्षकों की बात मानी ? तब दलितों में जागरण की लहर दौड़ पड़ी।

काँगड़ के किसानों पर बहुत ही कम लगान थी। दरअसल यह गाँव पहले कड़ीड़ जात के जाटों का था, उन्हीं के द्वारा इनकी नींव का पत्थर रखा गया था। समय के प्रवाह ने परिवर्तन का चक्र चलाया और यह काँगड़-ग्राम राठौर के हाथ लग गया।

पहले-पहल १९८० में जब यह किसी ठाकुर या उमराव के आधीन नहीं था तब यह गाँव खालसा में था और मजरूआ फी बीघा दो आने और पड़त बंजर दो पैसा थी। लेकिन अफीम के नशे में डूबे हुए ठाकुर ने फी बीघा २५) कर दिया और बंजरा का १९)। इस पर लाग-बाग अलग।

किसान इसे किसी भी तरह अपना पेट काटकर सह रहे थे लेकिन जब वसूली में मनचाहा जुल्म होने लगा तो उन्होंने आवाज उठाई। उनकी आवाज रंग लाने लगी। इस रंग में हर किसान रंगने लगा।

आश्वासन देकर मास्टर भीतर आया और भींटिया को पुकारा।

"कहिये मास्टर जी।" भींटिया उसके पास आ गया।

'शिक्षा तो तेरी अच्छी तरह चल रही है। काँगड़ गाँव के ठाकुर गोपसिंह जी के अत्याचार भी तूने सुन लिये हैं। कहो, क्या विचार है ? कुछ करोगे !"

"मेरा ख्याल है कि मैं भी इस आन्दोलन में सक्रिय भाग लूं। मैं भी एक किसान हूँ, दलित और शोषित।"

"हाँ, कल ही तू प्रजा-परिषद का सदस्य बन जाना, खद्दर तुम्हें पहनना होगा। अब मुझे ऐसे ही आदमियों की जरूरत है, जो मृत्यु को जीवन समझते हैं। भय को जो पहचानते ही नहीं हैं।"

भींटिया ने मास्टर के चरण-स्पर्श कर और श्रद्धा से सिर झुकाकर बोला, "ऐसा ही बनूँगा।"

"मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है।"

: १७ :

"क्या मैं भीतर आ सकती हूँ।"

"तुम भी पूछकर ही भीतर आओगी, क्या ?"

"जब कोई आदमी पुस्तक के साथ अपने आपको भूल चुका हो तो ?"

"तो भी सामीप्य वालों को यह अधिकार है कि वे उसकी तन्मयता को भंग कर सकते हैं।"

कृष्णा झींटिया के पास आकर बैठ गई।

"तुम्हें उम्मीद थी कि मैं अभी आ सकती हूँ ?"

"नहीं, तुम राठौर वंश की सुकन्या हो, गढ़ की चहारदीवारी पार कर जाट के घर पर आना, मेरी कल्पना के बाहर की बात है।"

'लेकिन झींटिया……"

"झींटिया नहीं, सूरज।"

"सूरज ! तुम तो जानती हो कि मैं ··।"

"कृष्णा !" झींटिया बिलकुल गम्भीर हो गया। उसके गले में कुछ अटक-सा गया था। इन चार महीनों में जब-जब कृष्णा से झींटिया की भेंट हुई उसने अपनी और कृष्णा की स्थिति को कटु सत्य को बताना चाहा, तब-तब उसके गले में कुछ अटक-सा जाता था और वह पूर्व निर्णय से विचलित हो जाता था।

"तुम चुप क्यों हो गये ?" उसका स्वर अज्ञात-भय से काँप उठा।

"सोच रहा हूँ, चींटी पहाड़ पर चढ़ने का प्रयास कर रही है। भला तुम्हीं बताओ, एक चींटी बहुत ऊँचे पहाड़ पर पहुँच सकेगी ?"

"बहुत वर्षों के बाद कदाचित पहुँच जाय।"

"मैं भी देख रहा हूँ, वह चींटी वर्षों से उस पहाड़ पर चढ़ने का

प्रयास कर रही हैं लेकिन अन्धड़, वर्षा, तूफान, गर्मी-सर्दी उसे चोटी पर पहुँचने से रोक रहे है। युग-युग से वह चींटी अपनी मंजिल पर नहीं पहुँच रही है। आखिर क्यों ? भींटिया के दायें हाथ की अँगुलियाँ अपने ही बालों में उलझ गईं। उसे समाज के प्रति एक रोष-सा आ रहा था। जिसने धरती की सन्तान में भेद-उपभेद की गहरी दरारें डाल दी थीं।

"मैं तुम्हारा आशय समझ गई हूँ सूरज, पर मैं कच्चे आधार पर जीवित हूँ। मैं तुम्हारे लिए···।" वह जो कहना चाहती थी कह न सकी।

"प्रेम का अन्धापन विवेक को पथभ्रष्ट कर देता है। तुममें साहस है—राठौर की ढाई हाथ लम्बी जूती से लड़ने का; जो जूती कानून की संज्ञा से पुकारी जाती है। इसलिए दिवा स्वप्न में भटकने से कोई लाभ नहीं। अपने अस्तित्व को पहचानो और···।" भींटिया की आँखें सजल हो उठीं।

"तुम कायर हो।" कृष्णा की आँखें लाल हो उठीं।

"तो मैं क्या करूँ ?"

"भाग चलो, क्या संसार में हम दोनों के लिए कोई जगह नहीं है ?"

"कहाँ ?"

"इतना बड़ा जो संसार है।"

"भागने वालों का समाज पीछा नहीं छोड़ता, कृष्णा ! बहुत दिनों से तुम्हें कुछ बातें कहने का विचार था, लेकिन कहने का साहस इसलिए नहीं होता था कि उनसे तुम्हारे हृदय पर गहरा आघात लगने की सम्भावना है।" अब भींटिया ने अपनी सजल आँखें पुस्तक के खुले पृष्ठों पर जमा दीं, "आज से नहीं, आदिम युग से वर्तमान परिस्थिति एवं समाज-व्यवस्था की गलत बातों के प्रति नयी पीढ़ी में विद्रोह रहा। यह विद्रोह की भावना मनुष्य के हृदय में प्रकृति की जन्मजात देन है। रूढ़िगत परम्पराओं से असन्तोष की आग सुलगती है और वह आग दबाने से और भड़कती है तब तक एक नये विद्रोह का जन्म होता है।

नया विद्रोह नया परिवर्तन लाता है। पर विद्रोह का सूत्रपात हमारे-तुम्हारे भागने से नहीं होगा। पलायन समस्या का समाधान थोड़े ही बन सकता। उसके लिए वैसी ही स्थिति एवं वातावरण तैयार किया जाता है। एक ऐसी आवाज लगाई जाती है जो हमारी पुरानी दकियानूसी मान्यताओं के विरुद्ध संघर्ष को बुलन्द करती है।"

कृष्णा का चेहरा, ग्रहन लगे चाँद की तरह उदास हो गया। लेकिन उसका सूरज तो दोपहर की तरह आग उगल रहा था, "तुम मुझसे प्रेम करती हो, उसे मैं स्वीकार करता हूँ। लेकिन आखिर तुम मुझसे ही प्रेम क्यों करती हो ?" कलेजा बींधने वाले प्रश्न ने कृष्णा को तिलमिला दिया। वह भौंचक्की-सी उसकी ओर देखने लगी।

"मैं तुम्हें आज से नहीं, बचपन से चाहती हूँ।"

"यह झूठ है।" झींटिया के स्वर का विश्वास बोला।

"यह सच, बिलकुल सच है।" कृष्णा का तन-बदन काँप रहा था जैसे हवा के झोंके से बेल काँपती है।

"अपने आपसे छल न करो कृष्णा।" झींटिया दुख से कराह उठा, "मेरी बातों से तुम्हें बड़ी तकलीफ होगी लेकिन वह तुम्हारे जीवन में नयी प्रेरणा को भी जन्म दे सकती हैं। कृष्णा तुम यह भली-भाँति जानती हो कि मेरा ब्याह मेरे सम-कुलीन घराने में सम्भव नहीं है। तुम्हारे पिता उपद्रव करके राजा जी की दृष्टि में अपराधी बन गये, धन का इतना अभाव है कि दहेज देना तुम लोगों के लिए सर्वथा असम्भव! लालकुँवर का फूल से यौवन की दुर्दशा···। इन्हीं सब बातों ने तुम्हें विवश किया कि तुम झींटिया की ओर आकर्षित हो और यह जानते हुए कि झींटिया ढोलनी से प्रेम करता है। उससे उसका निकट भविष्य में विवाह भी होगा। रोती क्यों हो कृष्णा ? रोने से तुम्हारे दुख खत्म नहीं हो सकते। झींटिया का गला भर आया उसने स्नेह से कृष्णा को अपने सीने से लगा लिया। उसके घने गहरे मुलायम केशों पर हाथ फेरने लगा, "मैं जानता हूँ कि तुम मुझे बहुत

चाहती हो, इतना, जितना अपने आपको ? परकेवल चाहने से तो चाह पूरी नहीं होती। यह तुम्हारा भूत-सा भयानक समाज अपनी तथा-कथित आन के लिए मानवता की सीमा को पार कर जाएगा। तुम्हारी यह सुराही जैसी लचकदार गर्दन उसके खूँखार पंजों द्वारा घोट दी जाएगी।" झींटिया बिलकुल आवेश में आ गया। उसका अंग-अंग फड़-कने लगा, "विश्वास न हो तो, आजमा के देख लो, जाकर अपनी बुआ से कहो तो सही, कि मैं सूरज से प्रेम करती हूँ, कल उसके साथ भाग जाऊँगी।"

कृष्णा ने तुरन्त आँसू पोंछ लिये। झींटिया ने देखा तो वह काँप गया। इतना भयंकर रूप उसने कृष्णा का कभी नहीं देखा था। ऊषा की शीतल ज्योत्स्ना की सदा प्रफुल्लित रहने वाली कृष्णा के शोले की तरह जलते चेहरे को देखकर उसके भी रोंगटे खड़े हो गये। कल्पना के परे की दुस्साहस की भावना उसे कृष्णा के मुख पर खेलती नजर आई।

"अच्छा सूरज, अन्तिम प्रणाम।"

"कृष्णा।" चिहुँक उठा झींटिया, "यह क्या कहती हो ?"

"मेरी एक बात मानोगे सूरज ?" उसके स्वर में धैर्य था।

"मानूंगा।"

"टालोगे तो नहीं।"

"नहीं।"

"मुझे भूलोगे तो नहीं ?"

झींटिया पाषाण। बुत !! उसकी आँखों के सामने ढोलकी आ खड़ी हुई। खेत के सौन्दर्य की तरह अकृत्रिम उसके सौन्दर्य में झींटिया हवा की तरह झूम उठा। उसके गालों को शत-शत चुम्बनों की वर्षा से नहलाने लगा। उसके फड़कते हुए अधरों पर अपने अतृप्त अधरों को रख कर धरा और बीज के कार्य को सम्पन्न कर मानव के विकास के महकते नवीन फूलों का दर्शन करने लगा। सोचने लगा, उस सौन्दर्य के अपार सागर समर्थ रख सकेगा या नहीं ?

अग्निबाण छूटा वह अपने को।

उसने कृष्णा के समस्त शरीर में आग लगादी—पाषाण, बुत, निर्मोही। झींटिया कुछ कहे, इसके पहले कृष्णा चली गई। झींटिया खड़ा था निश्चल और निश्चेष्ठ।

कृष्णा के चले जाने के बाद झींटिया की आँखों में अश्रु छलछला आये।

रात का गहरा अन्धेरा संसार पर छा गया था। कृष्णा अपने पलँग पर लेटी-लेटी पागलों की तरह तारों को गिनने का असफल प्रयास कर रही थी। सूरज के नाम पर वह पत्थर का सीना चीर कर बहने वाले झरने की तरह फूट पड़ती थी। उसने करवट बदली, "सूरज ने ठीक ही तो कहा कि यदि परिस्थिति तुम्हारे हक में होती तो तुम मुझे प्रेम करती ? नहीं। उसके कटु यथार्थ को मैं उसकी कठोरता को क्यों समझूं ? उसके हृदय की पशुता क्यों जानूं ? विवशता से उत्पन्न प्रेम की विद्रोही परम्परा प्रेम का शुद्ध रूप तो नहीं हो सकती ?"

वह अपने आप पर खिलखिला पड़ी, "आज सूरज ने मेरा सारा नशा उतार दिया। उस पंखहीन पंछी की तरह मेरे पंख काट डाले जो पिंजरे में बंद था और अचानक खुला होने पर वह उड़ चला। फिर वह वापस काबू में आ गया। तब नये सिरे से उसके पंख काटकर उसे पिंजरे में बन्द कर कहा गया-पंछी ! तेरा यही ठिकाना है। कहाँ उड़ चला था तू। उस स्वच्छन्द नील-निलय में जो अनन्त है, जहाँ दम लेने का ठिकाना नहीं। फिर भला तू अकेला उस असीम परिधि को कैसे पार करेगा। उसके लिये तो कई साथियों की जरूरत है अन्यथा तुझे अकेला पाकर क्या बाज तुम पर उदारता करेगा ? नहीं, वह तुम्हें इतनी बेरहमी से नोचेगा कि......।

कृष्णा के गाल गीले हो गये।

एकाएक उसे डेरे की मोटी लाल पत्थरों की दीवारें उसके चारों ओर घेरा बनाती हुई जान पड़ी। वह काँप उठी, जब उसने देखा कि

एक कंकाल उसकी ओर हाथ किये खड़ा-खड़ा अट्टहास कर रहा है। उसके ललाट पर भय से पसीना चमक उठा। उसने काँपते हुए पूछा—"तू कौन है ?"

वह खी-खी-खी-कर हँस पड़ा—तू मुझे नहीं पहचानती ? खी-खी-खी-जरा पहचान, डर नहीं, खी-खी-खी-मैं लाल कुंवर हूँ, तेरी बड़ी बहिन, खी-खी-खी अपने जीवन में मैं सदा सुखों से वंचित रही, इसलिए अब मैं मरने के बाद इधर-उधर भटककर सृष्टि के सुखों का अवलोकन कर रही हूं खी-खी-खी......।"

कृष्णा ने अपने दोनों हाथों से अपनी आँखें बंद कर लीं। जब उसने पुनः अपने हाथों को हटाया। वही स्वच्छ नीला गगन था—काली राख के घेरे की तरह। वही तारे थे—बुझे हुए अंगारों की तरह।

इसके बाद वह इतनी विचलित हो गई, कि सो न सकी। सारी रात उसने आँखों ही आँखों में काट दी।

× × ×

प्रभात हो गया था।

गोल सेज के चारों ओर कृष्णा की बुआ का सारा कुनबा बैठा था। गोलियाँ चाय खाने का सामान ला रही थीं। ठाकुर साहब के सिर में दर्द था इसलिए वे अनुपस्थित थे।

बड़ा कुंवर अजीतसिंह चाय की चुस्की लेते हुये, बोला—"अपने दीवान बड़े ही मूर्ख हैं। कल जो महाराज के यहाँ भोज हुआ था उसमें उन्होंने एक अँग्रेजी लेडी को बैठने का संकेत करके कहा—'मैडम !' सिटजा।"

"सिट्जा" कहकहे से बैठक गूंज उठी।

"बैठ जा का सिटजा कर दिया ?"

"क्या बुरा किया, आखिर दीवान जी का इतना अधिकार नहीं होगा तो फिर किस को होगा ?"

इसी प्रकार एक बार एक विदेशी ने उनसे सूर सागर तालाब के

बीच के खंडे के पानी के बारे में पूछा तो आपने अपने श्रीमुख से फरमाया-
"इन दिस कुण्डिया, गोडा-गोडा वाटर।"

जोर का कहकहा। एक विचित्र मस्ती की लहर। अनायास फूटा हुआ खुशियों का स्रोत। कहकहे,...हँसी...अट्टहास।

इन सब के बीच कृष्णा निस्तब्धता की एक असंगतरेखा खींच रही थी। अजीतसिंह ने तड़ाक से पूछा, "क्या बात है कृष्णा बाई सा, आप उदास क्यों हैं ?"

कृष्णा दुख की मौन हँसी हँस पड़ी।

"बोलती क्यों नहीं ?" बुआ ने तेज स्वर में कहा।

"बुआ जी ? आज से मेरा और आप ा साथ छूट रहा है। मैं आज आपसे बहुत दूर जा रही हूँ।" अपने अन्तस्थल के उठते हुए रोने को होठों और दाँतों के बीच रोककर उसने कहा।

कमरे में शाँति छा गई जैसे सितार के शाश्वत बजते हुए तार टूट गए हों, जैसे निरन्तर बहती लहरें तूफान के तीव्र प्रवाह से रुक गई हों।

बुआ ने अपने मुंह को मेज पर झुकाते हुए लम्बे स्वर में कहा, "क्या कह रही हो, कृष्णाकुंवर ?"

"हाँ बुआ जी ! मैंने तय कर लिया है कि मुझे किसी के गठ-बन्धन में बँध ही जाना चाहिए।"

"तो इसमें भाग जाने की क्या बात है ?" बुआ झुँझला उठी उपस्थिति परेशान-सी कृष्णा को देखने लगी।

"इस समाज में तो मेरी शादी नहीं हो सकती ?"

"क्यों ?" अजीत जैसे चौंका।

"दहेज में गाँव और रुपये चाहिए। वे कहाँ से आयेंगे ?"

अजीत पर घड़ों पानी ढुल गया। उसका उत्साह यकायक ठंडा हो गया। जिस ताव से वह बोला था वह ताव ही नहीं रहा।

"फिर तुम्हें अपने जीवन को अपने धर्म के अनुसार व्यतीत कर देने को तैयार हो जाना चाहिए। लालकुँवर ने जिस प्रकार आजीवन कौमार्य-

व्रत पालन कर अपने धर्म की मर्यादा रखी है उसी प्रकार तुम्हें···।"

"मैं ऐसा करने में असमर्थ हूँ।" बीच में ही बात काटती हुई कृष्णा दृढ़ता से बोली।

"क्या कहा ? अजीतसिंह, जा, ठाकुर साहब को बुलाकर ला तो।" क्रोध में वह फुफकार-सी उठी।

अजीतसिंह चला गया। उपस्थित के चेहरे पर घृणा नाच उठी। कृष्णा को महसूस हुआ कि जैसे वे सब उसके मुँह पर थूकने के लिए तैयार हैं।

ठाकुर ने कमरे में प्रवेश करते ही कहा, "क्या तेरी अक्ल गाँव चली गई है।"

"नहीं तो।" अपने आप पर सम्पूर्ण काबू पाकर कृष्णा ने धैर्य से उत्तर दिया।

"फिर क्या बकती है ? तू हमारी आन-शान-मान-मर्यादा को कलंकित करने लगी है। अब यदि तू इस प्रकार के बोल अपनी जबान पर लाई तो हम तेरी जबान काट लेंगे।"

कृष्णा ने देखा—ठाकुर साहब बार-बार अपनी मूँछों पर ताव दे रहे हैं। अपने एक पाँव को जमीन पर पटक रहे हैं, सहसा कृष्णा को भींटिया के वे शब्द याद हो आए—"मैं जानता हूँ कि तुम मुझे बहुत चाहती हो, इतना, जितना अपने आपको। पर केवल चाहने से तो चाह पूरी नहीं होगी। यह तुम्हारा भूत-सा भयानक समाज अपनी तथा-कथित आन के लिये मानवता की सीमा को पार कर जायेगा। तुम्हारी यह सुराही जैसी लचकदार गर्दन उसके खूँख्वार पंजों द्वारा दबोच ली जायेगी।···विश्वास न हो तो आजमा के देख लो। जाकर अपनी बुआ से कहो तो सही कि मैं सूरज से प्रेम करती हूँ, कल उसके साथ भाग जाऊँगी।"

कृष्णा संभली, "ठाकुर साहब आपकी मर्यादा तो कलंकित हो गई।"

"क्या कहा ?"

ठाकुर साहब ने खून का घूँट पिया। उन्हें अपने डेरे के बड़े-बड़े शिला-खंड ताश के मकान की तरह गिरते नजर आए।

"इस कुल-कलंकिनी को डेरे से बाहर कदम भी नहीं रखने दिया जाय। जब तक यह अपनी जबान बन्द न कर ले।"

कृष्णा जोर का अट्टहास कर उठी। अट्टहास से सारे कमरे में कम्पन सा आ गया।

"लेकिन मैं अब तक अपनी जबान बन्द न करूँगी जब तक आप मुझे यहाँ से भागने नहीं देंगे। ठाकुर साहब मैं कुँवारी नहीं रह सकती। मुझे पति चाहिये।"

"निर्लज्ज कहीं की।" ठाकुर साहब ने जोर का मुक्का उसके गाल पर मारा। खून का फुव्वारा-सा उसके मुँह से छूटा। लाल-लाल खून इन डेरों के बेजान पत्थरों की तरह लाल। कुसूम्बे के नशे में हुई क्रूर लाल आँखों की तरह लाल। कृष्णा के नयन भर आये। उसने अपने लहू को पोंछा। उसने देखा—उस लाल खून में उसको ठाकुर का कसाई की छुरी की तरह बर्बर चेहरा दिखाई दिया जो निरीह और बेजान पशुओं को घास की तरह काटकर रख देती है। वह मुस्करा पड़ी। उसकी मुस्कान में वैसी ही वेदना थी जैसी परवश द्रोपदी के मुख पर जुए के दाँव पर लगाने से आई थी। जो सीता के पुनः बनवास जाने पर आई थी। युग-के-युग बदल गये, वैज्ञानिकों ने सागर की गहराई का पता लगा लिया और पर्वत की ऊँचाई का। पर आज तक वैज्ञानिकों ने नारी पर होते अत्याचार का सही मूल्यांकन नहीं किया? उसने नदियों के रुखों को बदल दिया। ज्वालामुखियों की ब्याल-सी भयानक लपटों में घुसकर उसके आन्तरिक रहस्य को जानने का प्रयत्न कर लिया पर आज तक कौन-सा ऐसा वैज्ञानिक है जिसने मनुष्य के झूठे अस्तित्व का वैज्ञानिक विश्लेषण करके यह कहा हो कि तू जिसे अपना मान कह रहा है यही तो तेरा अपमान है।

कृष्णा का स्वर अस्फुट हो गया, "ठाकुर साहब! मेरा निर्णय

अटल है, मैं जरूर भागूँगी या आप मुझे किसी योग्य···।"

अजीतसिंह कंस की तरह दहाड़ा, "यदि ऐसा कहेगी तो मैं तेरी गर्दन तलवार से अलग कर दूँगा। तूने अभी राजपूतों को नहीं देखा।"

कृष्णा फिर मुस्कराई।

अजीतसिंह ने फिर दूसरा चाँटा मारा, "यदि ऐसी ही मन में थी तो किसी राजवी के घर जन्म लिया होता जहाँ दहेज के लिए दौलत होती।···कलंकिनी !"

कलंकिनी शब्द कृष्णा ने नहीं सुना। वह अचेत हो गई। ठाकुर साहब ने अन्तिम फैसला दिया, "इसको दवा-दारू की जरूरत नहीं, एक ऊँट इसके गाँव रवाने करके लालकुंवर को इस निर्लज्ज की बातों की जानकारी भेज देनी चाहिये।

× × ×

न जाये झींटिया को कृष्णा के चले जाने के बाद चैन क्यों नही मिला ? उसका मन किसी काम में नहीं लग रहा था। मास्टर ने भी तीन-चार दफे उसे बुलवाया तो भी वह वहाँ नहीं गया। लाचार मास्टर को खुद ही आना पड़ा। मास्टर ने आते ही शाँत स्वर में पूछा, "तू उदास क्यों है ?"

मास्टर ने सारी कथा आदि से अन्त तक सुन ली। कथा का अन्त होते-होते मास्टर अत्यन्त गम्भीर हो गया। पश्चात्ताप-भरे स्वर में आह छोड़ते हुए बोला, "तूने बहुत बुरा किया है, झींटिया।"

"आखिर मैं करता ही क्या ? वह तो मुझ पर दिन-पर-दिन आसक्त होती जा रही थी। मैं ही सम्भल रहा था। यदि मैं नहीं सम्भलता तो···।"

"हाँ, मैं जानता हूँ कि तुम दोनों का मेल इस परिस्थिति में सम्भव नहीं, पर एकदम पत्थर फेंकना भी तो मृत्यु का कारण बन सकता है।"

"मृत्यु !" वह अवाक् रह गया।

"तुम नहीं जानते झींटिया, यह सामन्त समाज वह सड़ा हुआ तत्व

है जो दिन-प्रतिदिन और घिनौना बनता जा रहा है। धीरे-धीरे इसका घिनौना रूप इतना ही भयानक हो जायगा, कि उसे अपनी विकृति में ही सत्य की आकृति के महान् दर्शन होंगे। तब नया जीवन, नया विचार नया उत्साह इस विकृति को इन्हीं ढेरों के नीचे गाड़ देगा ताकि इन्हीं की आने वाली पीढ़ी इन्सान की संज्ञा से पुकारी जा सके। उसे मानव की सहज सहानुभूति, नारी की वास्तविक वैकल्यता व प्रेम प्राप्त हो सके। पर अभी तो वह विकृति अपनी चरम सीमा की ओर बढ़ रही है। ऐसे समय में तूने कृष्णा के हृदय में साधारण नारी को पैदा करके अच्छा नहीं किया। तुझे तो उसकी क्षत्राणी को जगाना था ताकि वह आत्मघात न करे और उस समय तक वह अपने को जीवित रखे जब तक वह उस विकृति में सत्य के महान् दर्शन न कर ले।"

"तो···?"

"शायद तुम्हें एक मृत्यु के अपराध का पाप लगे।" मास्टर को आशंका हुई।

झींटिया डर गया। उसे अपने दोनों हाथ खून से लाल-लाल जान पड़ें, "मास्टर जी।" उसने मास्टर के पाँव पकड़ लिए।

"बात हाथ में आये पंछी की तरह है। निकल जाने के बाद वापस नहीं आती। उसका सवेरे तक प्रतिकार सोचो। हो सके तो झूठे अहम् का वातावरण उत्पन्न करके उसकी क्षत्राणी को जगा दो। आत्मघात से यह पाप बहुत ही प्यारा होगा।"

झींटिया कुछ सम्भला। उसके चेहरे पर दृढ़ता आई।

मास्टर उठ खड़ा हुआ। द्वार का सहारा लेकर वह कहने लगा, "कल शाम को परिषद् के कार्यालय आ जाना, परसों तुम्हें काँगड़ गाँव प्रस्थान करना है। ये वैयक्तिक समस्यायें सुलझती ही रहेंगी पर सामूहिक समस्या का समाधान तो तुरन्त हो जाना चाहिए।"

"जो शिष्ट-मंडल महाराज से मिला था, उसको क्या जवाब मिला ?" झींटिया ने पूछा। वह अपने को स्वस्थ करने का प्रयत्न करने लगा।

"महाराज के गृह मंत्री ने खरी-खोटी सुनाकर कहा, "आप हमारे नियमों को बदलना चाहते हैं। अकाल है तो क्या हुआ ? अकाल हमने तो पैदा नहीं किया। इन्हीं किसानों के भाग्य से हुआ है। इन्हें अपना लगान देना ही पड़ेगा।" बेटा ! माँ अपने बच्चे को भी बिना रोये दूध नहीं पिलाती। जी तो चाहता है कि अहिंसा और सत्याग्रह के शाँति मय तरीकों को तिलांजली देकर महात्मा गाँधी के ४२ के आन्दोलन की तरह इस धरती के कण-कण में यह चेतना फूंक दूँ कि करो या मरो। यह धरती हमारी है, यह खेत हमारे हैं, यह मोतियों जैसे दाने हमारे हैं।"

मास्टर की मुट्ठियाँ बंध गईं। वह कर्मठ सैनिक की मुद्रा में तनकर खड़ा हो गया। झींटिया देख रहा था, "मास्टर की आँखों में आग की लपटें उठ रही हैं जैसे ये लपटें विश्व के तमाम अत्याचार और अन्याय को भस्म करके नये जीवन आह्वान करेगी।"

× × ×

सवेरे उठते ही झींटिया कृष्णा के बुआ के डेरे की ओर चला। उसके पग भारी थे और उसकी आँखों के सामने बार-बार कृष्णा का मुख नाच रहा था, मुरझाये हुये फूल-सा मुख। फिर भी उसका अन्तर कह रहा था, "उसकी बुआ का पति विदेशों की सैर कर चुका है। शिक्षित भी है, अजमेर की मेयो कालेज का; जो सिर्फ राजे-महराजों व सामन्त-पुत्रों का ही कालेज है। वह भला इतनी दकियानूसी से काम क्या लेगा ?

वह डेरे के आगे पहुँचा, बड़ी भीड़ लगी हुई थी। उसका हृदय शंका-अशंकाओं में डोलने लगा, ठीक उस तरह जिस तरह मंझधार में पतवार टूट जाने पर खेवैया का हृदय डोल उठता है। उसने चुपके से एक आदमी को पूछा, "क्या बात है, इतनी भीड़ क्यों ?"

"कृष्णाकुँवर बाई सा देवलोक सिधार......।"

उसका हृदय विदीर्ण हो गया। हृदय के करुण रोदन से वह छट-पटा उठा। वह अर्थी की बारात में सम्मिलित हो गया। ठाकुर से उसने

पूछा, "क्या हुआ था इसे, ठाकुर सा ?"

"हार्ट-फेल ।"

वह आकर एकान्त में बैठ गया । अर्थी बनाई जा रही थी । वह गुमसुम बैठा था । तभी दो व्यक्ति जो गोलें ही थे, आपस में खुसपुस करने लगे, "हार्टफेल नहीं हुआ था ?"

"कृष्णकुँवर बाई सा, किसी पराये मर्द के साथ भाग जाना चाहती थी ।"

"राम-राम……।"

"ठाकुर सा ने पहले-पहल तो उसे पीटा बाद में……।"

"धीमे-धीमे बता, कोई सुन लेगा तो……।"

"बाद में अजीतसिंह जी ने उन्हें गालियाँ दीं ।"

"फिर ?"

"रात को ठाकुर सा ने अपने कुसूम्बे के प्याले को उसके हाथ में थमाकर कहा, "यदि तू अपना इरादा नहीं बदलती है तो ले पी, इस जहर को ताकि हमारा कुल कलंकित न हो ।"

"फिर ?"

"फिर उसने हँसते-हँसते कुसूम्बो पी लिया ।"

"मरते समय उसने कुछ कहा ?"

"नहीं, केवल उसकी आँखों में अश्रु थे ।"

अर्थी उठी, चली और चिता पर रख दी गई ।

देखते-देखते जलती चिता से मानवी रक्त माँस की दुर्गंध उठने लगी । चटखने की आवाज के साथ माँस के फटते हुए टुकड़े उस वातावरण में वैराग्य की भावना को जन्म दे रहे थे ।

झींटिया की आँखें भर आईं । कृष्णा का मुख-मण्डल उसकी आँखों के सम्मुख मुस्कराता हुआ नाच उठा । उसकी अन्तरात्मा में आभास हुआ जैसे एक फूल के साथ काँटा उग रहा है । वह काँटा मार्मिक वेदना उसके हृदय में उत्पन्न कर रहा है । कह रहा है कि चिता में

जलती हुई सीता-पुत्री को देख रहे हो जिसने न्याय नहीं, जीवन माँगा था। उठते हुए यौवन की अमराई में एक उमंग के फूल की चाह की थी, उन पंखुड़ियों की माँग की थी जिन्हें पुलकन की अनुभूति होती हैं। पर उसे कुछ नहीं मिला, न चाह मिली और न जीवन। उसे वही मिला जो युगों से इन नारियों को मिलता आया है। मीरा की तरह इसे भी जहर का प्याला दिया गया, पर मीरा ने विष के प्रभाव को समाप्त कर दिया और यह जलती हुई नारी स्वयं जहर के प्रभाव में आ गई। कुसुम्बो···मृत्यु चिता···आग की लपटें···।

इन सभी उत्तेजित विचारों ने उसके मस्तिष्क को डाँवाडोल कर दिया। उसने अपनी हथेली से अपने आँसुओं को पोंछा। उसे अपने चारों ओर फूल-ही-फूल नजर आये और उन फूलों में कृष्णा की विभिन्न आकृतियाँ। आवाजें और अट्टहास। उसने अपने कान बन्द कर लिये।

चिता अब भी जल रही थी।

उसकी अन्तरात्मा का प्रेम आँसुओं की धार बनकर समर्पण के रूप में टपकने लगा, "कृष्णा! तू पारिजात बन और मेरे यह आँसू उस पर शबनम की बूँदें बनकर चमकेंगे।" कुछ देर सोचकर उसने अपनी विचारधारा को बदला, "पर तू परिजात कभी भी मत बनना। तेरी कोमलता की यहाँ कौन कद्र करने वाला बैठा है।"

"अच्छा हो कि तू मेरा मोह त्यागकर डायन बन और फिर इन तमाम राक्षसों को मटियामेट कर दे ताकि इन दरिन्दों का पाषाण-हृदय कम-से-कम यह महसूस तो कर ले कि हम वास्तव में इन्सान नहीं, शैतान हैं।······विषाक्त पंजों वाले शैतान ······।"

उसने एक बार फिर अपने आँसू पोंछे। कई सिसकियाँ एक साथ आईं। उसके कानों में कृष्णा का दर्द-भरा स्वर गूँज उठा, "मुझे भूलोगे तो नहीं ?"

झोंटिया व्याकुल पंछी की तरह फड़फड़ा उठा।

उसके मस्तिष्क में संध्या के समय की क्षित्तिज पर उठती हुई धुंध-सी रेखायें छा गईं। मिल के धुएँ की तरह उसके मस्तिष्क में काले-काले बादल मंडरा गये। उसका मस्तिष्क शून्य-सा होने लगा। यकायक उसके मस्तिष्क की शून्यता में बिजली-सी पतली रेखा कोंधी जैसे उसका अन्तर कह रहा हो, "हाँ, कृष्णा हाँ, मैं तुम्हें कभी नहीं भूलूंगा। मैं तुम्हें प्यार करता हूँ, प्यार······

और वह फफक पड़ा।

: १८ :

अकाल की छाया गाँव पर मंडराने लगी। नीले आकाश पर उड़ते हुये गिद्धों को देखकर चौधरी के मन में दुर्दिन में मरे हुए पशुओं की याद ताजा हो उठती थी और उसका कलेजा काँप उठता था। खेत सूखे थे ऐसे कि प्रकृति ने धरती का समस्त सौंदर्य अपहरण करके उसे वैधव्य की आग में सुलगने को छोड़ दिया हो। सूखे पेड़ रोमांच उत्पन्न कर रहे थे जैसे भूख से छिपकली की पूँछ की तरह बिलबिलाते इन्सान दम तोड़ चुके हैं और बाद में गिद्ध, कौवों तथा शिकारी कुत्तों ने उसके तमाम माँस को खा लिया हो, फिर कोई क्रूर व्यक्ति नर-कंकालों को खड़ा करके चला गया हो।

हर किसान का चेहरा उदास था। वे सूरज उगने के पहले स्वच्छ आकाश की ओर प्यासी आँखों से इसलिए देखा करते थे कि कहीं इन्द्र-धनुष दिख जाय और सायंकाल वे सूरज की किरणों में लालिमा इसलिए खोजा करते थे कि लालिमा दिख जाने पर वर्षा अवश्य होगी। नदियों में बाढ़ भी आयेगी।

इस अकाल में गैले बाबा का उत्साह थोड़ा भी कम नहीं हुआ।

भूरसिंह का सिर फोड़ने के पश्चात् कारिन्दे उसे खूंखार समझने लगे, किसान खूब प्यार करने लगे। हरखा उसे चाहने लगी। हर रात वह चुपके से उसे दो मोटी-मोटी आटे की रोटियाँ बनाकर दे जाया करती थी। वह उसे याद दिलाने के हेतु सदा कहती थी कि भूरसिंह उस पर नजर गड़ाये रहता है।

"यदि इस बार वह तुझसे छेड़खानी करे तो मुझसे कह देना, मैं उसे जान से मार दूँगा।"

हरखा को गैले की इस बात से बड़ी शान्ति मिलती थी। वह तो उसे अपना वरदान समझती थी। मास्टर की स्मृति अब उसके हृदय-पटल से धीरे-धीरे धुंधली होती जा रही थी।

आज भी वह हमेशा की भाँति रोटी देने आई। गैला एक पेड़ के तने के सहारे बैठा-बैठा सो रहा था। आज वह सोता-सोता मुस्करा रहा था। उसकी मुस्कराहट देखकर हरखा भी न जाने क्यों मुस्करा उठी? वह निस्तब्ध पग-ध्वनि करती-करती उसके सामने आकर बैठ गई। गैला अब भी मुस्करा रहा था, हरखा भी मुस्करा रही थी, हरखा ने आकाश की ओर देखा, वह भी मुस्करा रहा था, तारे भी मुस्करा रहे थे। उसे सारी प्रकृति मुस्कराती हुई जान पड़ी।

काफी देर तक वह निश्चल प्रतिमा बनी गैले के सामने बैठी रही। यकायक आहिस्ते से पुकारा, "गैला···अरे ओ गैला···।"

"कौन है? अरे तू, रोटी लाई है?"

"हाँ, यह ले रोटियाँ!"

"ओह! मैं बहुत भूखा हूँ।" वह रोटियाँ खाने लगा। कौर को हलक से उतारते हुए कहने लगा, "सुना है, गाँव में अकाल पड़ गया है। गाँव वालों की नजरें भुरट, घीया भाटा और मुलतानी मिट्टी की ओर लगी हुई हैं। क्या यह सच है?"

"हाँ, यदि अब दस-बीस दिन बरखा नहीं हुई तो हम सबका यही

हाल होगा। हम कोड़पे की छालों पर ही जीवित रहना पड़ेगा।"

"ऐसा बुरा जमाना नहीं आयेगा।" गैले ने दृढ़ता से कहा।

"क्यों ?" आश्चर्यचकित हो गई हरखा।

"मैंने अभी-अभी सपने में तेरी आँखों में काजल देखा। तू जानती नहीं है।"

"तीतर पंखी बादली, विधवा काजल रेख
आ बरसे, वा घर करे, तामें मीन न मेख (१)

"गैला ! पर मैंने तो काजल नहीं डाला, देख ले मेरी आँखें। गैले ! मैं पाप नहीं कर सकती, पाप करते मेरा रोम-रोम डरता है।" उसने बात को बड़ी चतुराई से बदला, "आज मैंने सवेरे इन्द्रधनुष देखा।"

गैला मुस्करा पड़ा। फिर बोला।

"उगन्तरो माछलो, आथम तेरो भोग,
डंक कहे हे भड्डली, नदिया चढ़सी गोग।" (२)

"अब जरूर वर्षा होगी।' और वह जल्दी-जल्दी कौर उगलने लगा।

हरखा धीरे-धीरे वापस आ रही थी।" गैले ने जो काजल-रेख की बात कही उससे उसका मन भारी हो गया था। उसे अन्धकार में अपना दुल्हिन सा सोलह-शृंगार किया हुआ चेहरा दिखाई पड़ा। वह अपने रूप पर स्वयं मोहित हो गई, "काश भगवान उसके चूड़ले के शृंगार को नहीं छीनता तो क्या वह पूगल की पद्मिनी से कम फूटरी-फरी होती ? उसके चेहरे से तो रूप टपक रहा है।"

---

(१) उमड़ती हुई घटा और विधवा की आँखों में काजल देखने से स्पष्ट पता चलता है कि घटा बरसेगी और विधवा नया घर बसायेगी, इसमें जरा भी झूठ नहीं है।

(२) सवेरे इन्द्रधनुष का दर्शन, संझा के सूर्य की लाली की आभा, दोनों का मतलब है, वर्षा होगी।

स्वप्न भंग हो गया। किसी ने उसकी कलाई को पकड़कर चुनौती दी, "अब बोल हरामजादी, आज तेरा गर्व चूर करके ही छोड़ूँगा।"

"कौन तू, भूरसिंह ?"

"हाँ भूरसिंह, बोल अब भी अकड़ दिखायेगी या···।"

"नीच ! कमीने ! तेरी अपनी कोई माँ-बहिन है या नहीं।"

घोर जंगल में हरखा की आवाज गूँजकर ध्वनित-प्रतिध्वनित हो उठी। उसकी आँखों में खून के अश्रु भी उतर आये। कहते हैं, क्रोध में आँखों से अश्रु नहीं खून बरसता है और हरखा की आँखों से बिल्कुल लाल खून ही बरस रहा था।

"मेरी माँ-बहिन मेरे घर पर बैठी, तू उनकी चिन्ता क्यों कर रही है।···बोल राजी से···।" उसकी वासना अन्धी हो रही थी।

"धड़ाक्···।" एक चाँटा हरखा ने उसके गाल पर मार दिया।

"छिनाल की यह मजाल···।" कहकर भूरसिंह ने अपनी कमर से वह कटार निकाली जो साँप की जीभ की तरह लपलपा रही थी, किसी बेबस इन्सान का खून पीने। हरखा भय से काँपती हुई पीछे हट रही थी। भूरसिंह वासना की उत्तेजना में हिंस्र बना आगे बढ़ रहा था।

वासना और लाचारी का संघर्ष था। आज नहीं, युगों से शक्तिवानों ने लाचारी के अपहरण में कोई कोर-कसर नहीं रखी। इतिहास गवाह है कि राजाओं ने अपने निर्बल राजाओं की धर्म-पत्नियों को तलवार के साये मे लाकर उस झूठन को कुत्तों की तरह खाया। कितनी पतित परम्परा है, हमारे पूर्वजों की ? नारी के सतीत्व की पवित्रता शक्ति के सम्बल से हरली जाती है। फिर धर्म उसकी अग्नि-परीक्षा की माँग करता है और उस निरीह आत्मा को अपनी समस्त अभिलाषाओं को लिये अग्नि में जल मरना होता है।

हरखा उस अग्नि की भयंकर लपटें देख रही थी। राक्षस रामायण के कुम्भकरण जैसे अपने लम्बे-चौड़े हाथ फैलाये उसकी ओर बढ़ रहा था कि राम ने पीछे से तीर मारकर कुम्भकरण को अचेत कर दिया।

हरखा ने देखा, "यह तो गैला है ।"

भय के आवेश में वह गैले के आलिंगन में आबद्ध हो गई ।

लोहे से लोहा टकराने से जिस पवित्र आग का जन्म होता है, उसी प्रकार भगवान के सताये दो हृदय के मिलन पर महान् प्रेम की ज्वाला का जन्म होने लगा था । दोनों पर भगवान का कोप था । एक पर अत्याचार था कि उसे पागल बना दिया और दूसरे पर था कि उसका सुहाग छीन लिया । विधाता अपने विधान की उपेक्षा कर सकता है पर हृदय अपने विधान की उपेक्षा कभी नहीं कर सकता ।

गैला भयभीत हरणी को अपने आलिगन मे आया देख विह्वल हो उठा । उसके मुलायम केशों पर हाथ फेरकर उसके अश्रुओं को अन्धकार में देखने का प्रयास करने लगा । अनायास ही उसके अधर हरखा के अधरों पर जा टिके । एक मोहक वातावरण की सर्जना हो गई । सहस्रों दीप उस प्रान्तर में जगमगा उठे । धरा अपने बीज को पाकर प्रसन्न हो उठी । कुछ देर तक विमुग्ध वातावरण छाया रहा । हरखा के काँपते हुये होठों ने कहा, "गैला ।"

"डर नहीं, मैं···मैं इस पाजी के बच्चे को···।" और गैला एक दम भयानक हो उठा । वह भूरसिंह को घसीटता हुआ उस झाड़ी के नीचे ले गया जिसे लोग भूत की झाड़ी कहते हैं । वहाँ उसने अपने दोनों हाथ से उसका गला दबाकर झाड़ी पर फेंक दिया ।

रात भर हरखा कभी दीपक की लौ को और कभी अपने अधरों को देखती रही ।

× × ×

तड़के ही गाँव में यह बात हवा की तरह फैल गई कि भूरसिंह भूत की झाड़ी पर मरा पड़ा है । गाँव में एक सनसनी पैदा हो गई । सुजानसिंह अपने साथियों के साथ वहाँ गया । उसके साथ गाँव की भीड़ थी जो भूत के डर से वहाँ जाने को तैयार नहीं थी । हरखा का तो दम ही निकल गया था । उसके आगे तो बार-बार फाँसी का फंदा घूम रहा था,

"आखिर गैले ने उसे मार ही दिया, बेचारा भूरसिंह ! अच्छा ही किया, ऐसे दुष्ट इस गाँव में रहते तो न जाने कितनों की बहू बेटियों को खराब करते। मर गया खड़-खड़ मिटी (निर्भय होना)।

चौधरी इस घटना से चिन्तित हो उठा। भूरसिंह की मौत न जाने कितने निर्दोष गाँव वालों को पिटवायेगी। प्रबन्धक ठाकुर जिस किसी को अपना दुश्मन समझेगा, उसे संदेह के जुर्म में कैद कर गधे की तरह मारेगा।

चौधरी भी भूत की झाड़ी को देख रहा था। ठाकुर के चाकर भूरसिंह की लाश को काँटों में से खींच रहे थे जिससे भूरसिंह की चमड़ी जगह-जगह छिलती जा रही थी। खून रिसने लगा था। दर्शकों के चेहरों पर आतंक छा गया था।

'मर गया।" जोर की आवाज आई।

सबने घूमकर देखा—गैला खड़ा-खड़ा अट्टहास कर रहा है।

कई आदमी एक साथ चिल्ला उठे, "गैला!"

"मर गया, झाड़ी के भूत ने इसे मार दिया, मैंने इसे मार दिया, ...मैंने।" वही भयानक अट्टहास।

ठाकुर का कारिन्दा कानसिंह चीखा, "पकड़ो हरामजादे को, टुकड़े-टुकड़े कर दो।"

उसकी आवाज पर चार लठैत दौड़े। गैला भी पैंतरा बदलकर खड़ा हो गया। चौधरी ने भगवान् से प्रार्थना की। ढोलकी ने गैले के लिये गाँव के भैंरू को प्रसाद बोला।

एक लठैत ने कसकर गैले पर लट्ठ मारा। गैला अपनी नियत जगह से हट गया। लठैत का लट्ठ इतने जोर से जमीन पर पड़ा कि उसका लट्ठ उसके हाथ से छूट गया। गैले ने झपटकर उस लट्ठ को उठा लिया और पलक झपकते उस लट्ठ से उसी लठैत का सिर लाल कर दिया। उसकी ही लाठी, उसका ही सिर।

अब क्या था ?

वे तीन और गैला अकेला। बड़ी भयानक लड़ाई हुई। कानसिंह चीख-चीखकर दहाड़ रहा था, मार दो, जिन्दा न रहने पाये।" लेकिन जब उसने देखा कि उनके लठैतों के सिर से खून बह रहा और गैला खड़ा-खड़ा अट्टहास कर रहा है तब उस नौकरपेशा वाले राजपूत की रग-रग फड़की। वह कुछ देर तक अट्टहास सुनता रहा जैसे गैले के अट्टहास में उस प्रजा के एक आदमी की शक्ति का आभास है जो चार अत्याचारियों को सरलतापूर्वक धराशायी कर सकती है। जैसे गैले का अट्टहास सभी किसानों को कह रहा है, यह है तुम्हारी अजेय शक्ति जब इंकलाब करने का आह्वान करती है तो इसी प्रकार अत्याचारियों को समाप्त कर देती है। सिर्फ तुम अपनी ताकत को पहचानो और जानो कि तुम्हारी भुजाओं में कितना बल है, तुम्हारी हड्डियों में कितने वज्रों के निर्माण की शक्ति है ? सिर्फ तुम जागो और अपने अस्तित्व को पहिचानो······

"धाँय······"

सनसनाती गोली गैले के सीने से पार हो गई। चौधरी ने तड़पकर कानसिंह को टोका, "यह अत्याचार है।"

सारा जन समूह कह उठा, "यह अत्याचार है।" पृथ्वी और गगन कह उठे, "यह अत्याचार है।"

भीड़ गैले के चारों ओर जमा हो गई।

कानसिंह अपनी रायफल के घोड़े को ठीक करता हुआ बोला, "यह अत्याचार कैसे है ?"

"यह सरासर जुल्म है ?" तीर की भाँति ढोलकी सीना तानकर उसके आगे खड़ी हो गई, "यह भूत की झाड़ी है, रात को जो यहाँ आयेगा, वह कभी नहीं बचेगा ?"

"यह झूठ है।"

"यह झूठ नहीं, तू झूठ है।" ढोलकी गर्जी।

चौधरी ने ढोलकी को पीछे ढकेला, "कानसिंह ! हमारे गाँव के कई

आदमी इसी झाड़ी पर मरे हुये पाये गये थे, फिर भूरसिंह मर गया तो क्या हुआ ? यह कोई नई बात नहीं ?

झाड़ी उन तमाम मूर्खों पर खिलखिलाकर हँस पड़ी, "तुम सब नादान हो, न मैं कोई भूत की झाड़ी हूँ और न कोई पलीत की । अरे तेरा ठाकुर जब अपने किसी शत्रु की हत्या कर देता, उसे वह इस झाड़ी पर फेंक जाता और कह देता कि इसे भूत ने मार डाला है । गाँव भूत-पलीतों की कहानियों पर विश्वास करता ही है । साथ ही सारा गाँव उस राक्षस की इस बात पर भी भरोसा कर लेता था ।"

"पानी···पानी ।" गैंले ने अस्पष्ट स्वर में कहा ।

हरखा गोली की आवाज सुनकर चौंक उठी थी । उसे ऐसा महसूस हुआ कि गोली उसके ही सीने में लग गई है । उसने अपना कलेजा अपने दोनों हाथों से पकड़ लिया । वह डागले (छत) पर खड़ी-खड़ी देखने लगी । भूत वाली झाड़ी के चारों ओर बड़ी भीड़ जमी हुई थी । वह आशंका से वाचाल हो उठी ।

तभी एक लड़का दौड़ा-दौड़ा आया, "हरखा, ऐ हरखा !"

"क्या है ?"

"जल्दी से पानी दे ।"

"क्यों ?"

"गैंले के गोली लग गई है ।"

"गैंले के गोली लग गई ।" जैसे उसे उस छोकरे की बात पर विश्वास न आया हो ।

"हाँ ।"

वह पानी लेकर भागी । भीड़ को चीरती हुई वह कह रही थी, "पानी-पानी···?"

गैंले का सीना खून से लथपथ था । उसके सिरहाने ढोलकी बैठी-बैठी उसका सिर सहला रही थी । पानी का लोटा चौधरी को देकर हरखा उसके पाँवों में बैठ गई । उसकी आँखें तरल थीं । वह उसके

पाँव सहलाने लगी।

"लो, पानी पीओ, गैला···।" चौधरी का स्वर भर आया।

गैला बोल न सका। उसने अपना मुँह फाड़ दिया। चौधरी ने धीरे-धीरे पानी उसके मुंह में डाला। पानी पीकर वह मुस्कराया। उसकी आँखों के आँसू भी मुस्कराये। जैसे वह कह उठा, "हरखा मैं तेरा ही इन्तजार कर रहा था, एक रात तू मेरे आलिंगन में आई थी न, मैंने तुम्हें चूमा था, यह चुम्बन मेरे जीवन का अमर फल था, धरा की बीज को अनुपम भेंट थी। सूरज और क्षितिज का असीम-अलोकिक मिलन था, गैले को मानव की सच्ची प्रेम-भावना तूने ही दी थी, इसलिए वह तुम्हें कभी भी नहीं भूलेगा।"

और धीरे-धीरे गैले की आँखें चौधरी पर जम गईं। एक साहस-भरी मुस्कान उसके होंठों पर नाच उठी जैसे सूरज के डूब जाने के बाद क्षितिज के अधरों पर नाचती है-लाल-बिल्कुल लाल, दंभ और साहस भरी।

चौधरी रो पड़ा, "गैला!" एक करुणा-रोदन छा गया। उस वातावरण में। ढोलकी के आँसू गैले के मुँह पर गिर रहे थे और हरखा उसके कदमों पर गिरकर सिसक रही थी। एक ऐसे करुण वातावरण की सृष्टि हो गई थी जो दिलों को हिला रही थी। जैसे गाँव का कोई सबसे प्यारा मानव चला जा रहा हो और गैला धीरे-धीरे दम तोड़ने लगा।

× × ×

उसके तीसरे दिन ही लालकुँवर को केन्द्र की ओर से यह फरमान प्राप्त हुआ।

श्री ठाकुर···

ठिकाणा गाँव···

आपको इत्तिला दी जाती है कि आपके ठिकाणे का इन्तजाम दिन-ब-दिन बिगड़ता जा रहा है जिससे रैयत में विद्रोह की चिनगारियाँ फैल

रही हैं और जिससे यह भी डर हो रहा है कि कहीं अमन-चमन को धक्का न लगे। इसलिए केन्द्र ने यह तय किया है कि मौजूदा हालात देखते हुये इस ठिकाणे को केन्द्र अपने प्रबन्ध में लेती है जिसकी एवज में ठिकाणेदार को परवरिश के लिए इतने रुपये······सालाना खर्च दिया करेगी।

दस्तखत

दीवान, बीकानेर राज्य

बड़ी मछली छोटी मछली को निगल गई।

× × ×

गैले को जहाँ जलाया गया था, वहाँ गाँव वालों ने एक-एक ईंट जमा कर दी और यह तय किया गया कि इनसे गैले की याद का एक चबूतरा बनाया जाय अथवा छतरी। ताकि गाँव वाले उस महान् आत्मा को कभी न भूले जिसने उस अत्याचारी को मारा जो गाँव की इज्जत को इज्जत नहीं समझता था, उसे कलंकित करने की चेष्टा करता था।

उस चबूतरे पर पहले-पहल तो सभी दीपक जलाया करते थे, बाद में अकेली हरखा रह गई थी जो हर साँझ-सवेरे घी का दीया जलाया करती थी। समाधि पर वह ज्योंही दीया रखती त्योंही टप से दो आँसू उसके घी में मिल जाते थे। प्रकाश और तेज हो जाता था। वेदना और मुखरित हो उठती थी।

: १९ :

झींटिया प्रजा परिषद् का सदस्य बन गया। उसने भी खादी का कुर्त्ता व धोती पहन लिये। उसमें भी देश के सेनानियों की सारी शक्ति आ गई। उसका खून गर्म हो उठा, कुछ करने के लिये।

आज प्रजा परिषद् की बैठक थी। यह तय किया जाने वाला था कि किन-किन व्यक्तियों को काँगड़ गाँव भेजा जाय। काफी वाद-विवाद के बाद निम्नलिखित नाम तय किये गये—

श्री स्वामी सच्चिदानन्द

श्री केदारनाथ एम० ए०

श्री हँसराज

श्री दीपचन्द

श्री मोजीराम

श्री गंगादत्त रंगा

श्री रूपाराम और श्री भींटिया।

बैठक समाप्त हो जाने के बाद भींटिया मास्टर के पीछे-पीछे उत्साह के साथ चल रहा था। उसका मन कर्त्तव्य के प्रति सजग होकर नये जीवन का अनुभव कर रहा था।

मास्टर ने आगे से पुकारा, "भींटिया!"

'हाँ, मास्टरजी।"

"कल से तेरा नया जीवन प्रारम्भ होगा।"

"आपकी कृपा से।"

वे दोनों बराबर आ गए।

"भींटिया!" मास्टर नितान्त गम्भीर हो उठा, "जनता और सत्ता का संघर्ष एक विचित्र नीति है। जनता को सत्ता से टकराने के पहले अपने संगठन पर दृष्टिपात कर लेना चाहिए। अपने कार्य-कर्त्ताओं का पर्यवेक्षण कर लेना चाहिये कि वे कितने ईमानदार और लगन के पक्के हैं? उनकी इन दुर्बलताओं का भलीभाँति अध्ययन कर लेना चाहिये कि ये अवसरवादी तो नहीं हैं और ये अपने व्यक्तिगत स्वार्थों के पीछे तो नहीं लड़ रहे हैं? ऐसे व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत दिलचस्पियों को लेकर संघर्ष का बहुत बड़ा अहित कर सकते हैं। जन-आन्दोलन को कुचल सकते हैं।

"दूसरी बात यह है कि आन्दोलन का उद्देश्य बिलकुल स्पष्ट होना चाहिये। उसका कार्यक्रम ठोस होना चाहिये। स्वराज्य, पूर्ण स्वराज्य स्वतंत्रता, आजादी, इंकलाब के नारे संघर्ष के सही रूप नहीं बन सकते। आन्दोलन का जो उद्देश्य हो, उसी का सीधा लक्ष्य होना चाहिये। हाँ, गलत नेतृत्व आन्दोलन की आग को ठंडा कर देते हैं। इसलिये नेतृत्व की बागडोर उस व्यक्ति के हाथों में देनी चाहिये जो आन्दोलन, उसके संघर्ष और उसकी प्रतिक्रिया का वैज्ञानिक विश्लेषण कर सकता हो।"

मास्टर के चुप हो जाने के बाद भीटिया ने पूछा, "आन्दोलन के नेता का उस घड़ी क्या कर्त्तव्य हो जाता है ?"

"उसे तो हर वर्ग में चेतना की आग फैला देनी चाहिये। विशेषतः युवकों के बीच। किसान-मजदूर और छात्रों के बीच भी संगठन बनाने का जोर लगा देना चाहिये। जनता की जागृति चेतना को जगाती है और चेतना आन्दोलन को सफल बनाती है।"

"आन्दोलन में सत्य की कसौटी ?"

"प्रश्न बहुत ही गंभीर है। फिर भी यह व्यवहार में देखा गया कि दल अपने अधिकारों के लिये संघर्ष करता है, वह सदा विजयी होता है। वे अधिकार उसके अपने हैं, उसे मिलने ही चाहिये और अन्ततोगत्वा वे अधिकार संघर्ष के पश्चात् उसे प्राप्त हो ही जाते हैं। वह अधिकार ही जनता का सत्य है और उस सत्य के बिना कोई भी आन्दोलन सफल नहीं हो सकता। मसलन-हर आदमी को रोटी और कपड़ा मिलना चाहिये या स्वतन्त्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। यह अधिकार हर देश का वह सत्य है, जिसके लिए वह अपना सर्वस्व विसर्जन कर सकता है। मर जायेगा, मिट जायेगा और इस सत्य को लेकर ही छोड़ेगा। लेकर ही क्यों, वह उसे मिलेगा, निसन्देह मिलेगा। लेकिन यदि तुम इस सत्य को छोड़ करके इस बात का नारा लगाओ कि हम शक्तिवान हैं इसलिए दूसरों की स्वतन्त्रता छीनना हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है; तो वह अधिकार दमन से ही प्राप्त होता है। वह असत्य अत्याचार से जीता

जाता है और असत्य नित्य नहीं है । इसलिए वह एक-न-एक दिन समाप्त होकर ही रहता है ।"

"लेकिन जो अहिंसा है, वह ?"

"राष्ट्रपिता हमारे स्वातन्त्र्य-संग्राम के सेनानी हैं। बापू ने हमें यह नया सत्य और दिया है ताकि हमारा सत्य का संघर्ष जारी रहे । पर उसका तात्पर्य यह नहीं है कि हम अहिंसा का अन्धा-अनुकरण करें । बापू की अहिंसा हमें दया सिखाती, हमारे मार्ग को प्रशस्त करती है । पर मैं अहिंसा के औचित्य को ही स्वीकार करता हूँ । मैं उस अहिंसा से अपने प्रत्येक साथी को हजार कदम दूर रखना चाहता हूँ जो आदमी को नपुंसक बना दे । मनुष्य को नपुंसक नहीं बनना चाहिये । नपुंसकता का दूसरा नाम ही मृत्यु है । यदि मनुष्य पहले से ही अपने को मृत बना देगा तो भला वह लड़ेगा क्या ? इसलिए मनुष्य की जंगजू प्रवृतियों को सदैव जिन्दा रखना चाहिये ताकि वह संघर्षशील बना रहे ।"

मास्टर जी का घर आ गया था ।

उसके घर में सिवाय पुस्तकों के कुछ नहीं था । सोने के लिये एक अच्छा-सा मुलायम बिस्तरा और पहनने के लिए अच्छी-से-अच्छी खादी ।

इन बढ़िया वस्त्रों के लिये कई बार उसके साथियों व मित्रों ने टोका भी था उसने बहुत संयत होकर मधुर स्वर में कहा, "मैं देवता नहीं हूँ और न देवत्व को प्राप्त किया हुआ इन्सान कि मैं युग की उस अच्छाई का त्याग कर दूं जिसने मनुष्य के सौन्दर्य को निखारा है । जो वस्तु मानवी-सौन्दर्य की पोषाक है, उसे मेरे जैसा साधारण पुरुष त्याग नहीं सकता ।"

"लेकिन इसका जनसाधारण पर प्रभाव...?" उसका एक मित्र कहता-कहता बीच में ही रुक गया जैसे उसका अन्तःकरण उसकी आवाज का साथ नहीं दे रहा हो ।

मास्टर की गंभीरता पूर्ववत् बनी रही, "जनसाधारण पर वस्त्रों का प्रभाव नहीं पड़ता । भगवे वस्त्र कितने ढोंगी पहनते हैं ? लाखों । तो

क्या उन कपड़ों के कारण ही जनता उन्हें महात्मा समझने लगी ? यह कहना सर्वथा गलत है। भला-बुरा प्रभाव प्राणी के आचार-विचार से पड़ता है। मनुष्य के पास नैतिक बल होना चाहिये, सच्चाई और ईमानदारी होनी चाहिये। ये ही सब उसका सही मूल्यांकन है। रही खादी की बात तो अभी खादी पहनना भी हमारे आन्दोलन का एक अंग है, इसलिये सब को खादी पहननी ही चाहिये।"

मास्टर बिस्तरे परसुस्ताने लगा। उसकी आँखें थकान से बन्द हुई जा रही थीं। सोये-सोये वह बड़बड़ा रहा था, "मनुष्य का सच्चा सुख इसी में है कि वह अपने जीवन को एक उत्कृष्ट और महान् लक्ष्य की पूर्ति में लगाये और आज हमारा प्रथम और महान् लक्ष्य स्वतन्त्रता प्राप्ति का है और उसके बाद सामन्तवाद तथा पूंजीवाद की समाप्ति का।"

"मैं जाऊँ ?" झींटिया ने उसके ध्यान को भंग किया।

"हाँ, तू जा। अरे सुन तो !"

झींटिया वापस उसके पाँव तले बैठ गया।

"आज से तू परिषद का वह नवयुवक हो गया है जिसका जीवन अब वैयक्तिक हितों से आगे समष्ठि के हितों से भी अपना गहरा सम्बन्ध रखेगा, इसलिए तुझे याद रखना होगा कि तू जियेगा तो जनता के लिए और मरेगा तो जनता के लिए।"

"मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं अपने तमाम व्यक्तिगत हितों का परित्याग कर दूँगा।"

"इसका मतलब यह नहीं है, कि तू अपने व्यक्तिगत कर्तव्यों को ही भूल जायेगा। जैसे पत्नी के प्रति तेरा कर्तव्य, माँ-बाप, भाई-बन्धु के प्रति तेरा कर्तव्य। ऐसे कर्तव्यों के साथ सत्य का आधार रखना। यही सत्य का आधार तुम्हें पथ-विमुख नहीं करेगा।"

हवा के झोंके से फटाक की आवाज से खिड़की खुली और उस खिड़की की राह प्रकाश-पिंड कमरे में गिरा जिससे कमरा प्रकाशमान

हो गया क्योंकि अब नया जीवन आ रहा था।

× × ×

झींटिया जब घर पहुँचा। उस समय घरों के दीये जल चुके थे। उसकी पड़ोसिन छगा अपनी चौकी पर बैठी-बैठी उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। उसकी मुद्रा से साफ जाहिर हो रहा था कि वह सख्त नाराज है।

झींटिया को देखते ही वह उबल पड़ी, "अरे वाह भइया, वाह! तुम इतने मन के मैले होवोगे, यह मैंने कभी सपने में भी नहीं जाना था।"

झींटिया अवाक्, "क्या बात है छगा?"

"अपने मन से पूछो कि तुमने मुझे कौन-सी बात नहीं बताई है?" वह अपने निचले होंठ पर तर्जनी रखकर खड़ी हो गई।

झींटिया ने अपने सिर पर हाथ फेरा। सोचा भी पर उसकी समझ में कुछ भी नहीं आया कि मैंने ऐसी कौन-सी बात छिपा ली है जिसमें छगा की गहरी दिलचस्पी हो सकती है। अन्त में वह निर्णय करता हुआ बोला, "मैंने तुमसे कोई भी ऐसी बात नहीं छिपाई है। तुम्हें तो केवल वहम हो गया है।"

"अरे जा-जा! मेरे भाग्य भी पत्थर के नीचे नहीं हैं। घर बैठे-बैठे सब जान गई हूँ।"

"क्या?"

"तुम्हारी घरवाली को···।"

"पर मैं तो कुंवारा हूँ।"

'अभी हो, कल को किसी से अपने हाथ पीले करोगे। कभी कहा तक भी नहीं कि मैं ढोलकी···।"

"ढोलकी! उसके होठों पर मुस्कान नाच उठी।

"हाँ, ढोलकी।" छगा ने आँख का संकेत किया, "भीतर बैठी है। तुम्हें देखकर लजा गई। हाथों से अपना मुंह छुपा लिया। बड़ी लजवन्ती है, बड़ी फूटरी (सुन्दर) है।"

"पर है कहाँ, उसे घर में भेज दे, और हाँ, काका ?"

"तुम्हें अडीकते-अडीकते (प्रतीक्षा करते-करते) उकता गये थे, इसलिए बाजार चले गये हैं।"

भींटिया ने ताला खोलकर छगा को आवाज दी, "छगा बहिन ! ढोलकी से कह दो कि वह सामान लेकर आ जाए।"

ढोलकी सिर पर बिस्तरा रखे और बगल में गठरी रखे धीमे-धीमे पग उठाती हुई घर में घुसी। नया घर, नया भींटिया और एकान्त। उसका रोम-रोम सिहर रहा था।

जब छगा और भींटिया बातचीत कर रहे थे तो वह अपने मन की देखने की तीव्र उत्कण्ठा को नहीं रोक सकी थी। अतः उसने उसको किवाड़ की ओट से देख ही लिया था, खद्दर की सफेद धोती, खद्दर का सफेद कुर्ता और बहुत अच्छे छोटे-छोटे नये ढंग के कटे बाल। वास्तव में भींटिया बिलकुल ही बदल गया था।

भींटिया भी ढोलकी को देखकर कुछ-कुछ शर्मा हो गया। रुकते-रुकते बोला, "आखिर तू आ ही गई ?"

ढोलकी का चेहरा लाज से लाल होने लगा। निचला होठ कुछ कहने को फड़का पर कुछ कह नहीं सकी।

"बोलती क्यों नहीं ?" भींटिया ने आगे बढ़कर उसका हाथ पकड़ लिया। शान्त पानी में किसी ने कंकर फेंककर उसमें कम्पन पैदा कर दी हो, वैसी ही कम्पन उसके तन-मन में उत्पन्न हो गई।

उसने अपना हाथ छुड़ा लिया, "मेरा जी नहीं माना।"

"तेरा जी बड़ा चंचल है।"

"नहीं, तेरी ओलू (याद) ही खूब आती थी।"

"मेरी ओलू, क्यों ?"

इस प्रश्न का उत्तर देने में ढोलकी ने सदा अपने को असमर्थ पाया। वह अपने पाँव के अंगूठे से जमीन कुरेदने लगी। कुरेदते कुरेदते उसने बमक कर उलाहना दिया, "लेकिन तेरी तरह मैं मोह-चोर तो नहीं हूँ।

कभी चिट्ठी में मुझको दो हरुफ (शब्द) भी नहीं लिखे।"

"तू ठहरी बड़ी सीधी-सादी, तुझे कैसे लिखता? काका तो जानता है कि तू मेरी बहू और बहू को···।"

"बड़ा मुसियाखोर (बहानेबाज) हो गया है।"

"यहाँ की पून (हवा) ही ऐसी है।"

"तब तू मेरे संग चल।" ढोलकी ने झींटिया के हाथ पकड़ लिये। दोनों कुछ देर तक एक दूसरे की आँखों की गहराई में तैरते रहे। ढोलकी के अन्तर की विचार-शून्यता स्पष्ट झलक रही थी पर झींटिया का विवेकपूर्ण मानस कब शान्त रहने वाला था। सोच ही बैठा, सौंदर्य का शोला दहक रहा है। तेज होते ही उसे जला बैठेगा। वह सम्भलता हुआ बोला, "गाँव का क्या हाल-चाल है?"

"अच्छा है।"

"ठाकुर की ठकुराई तो खतम हो गई।"

"हाँ, गैला भी मर गया।"

"गैला मर गया।" एक झटका-सा लगा झींटिया के अन्तःकरण पर।

"हाँ, उसे ठाकुर के आदमियों ने गोली मार दी।"

"गोली मार दी, आखिर क्यों?" उसका स्वर तेज हो गया।

"उसने भूरसिंह को जान से मार दिया।"

एक विकट पहेली बनती जा रही थी।

"उसने भूरसिंह को जान से क्यों मार दिया?"

"उस नीच ने हरखा की इज्जत पर डाका डालना चाहा।"

"फिर?"

"गैले ने उसे जान से मारकर भूत की झाड़ी पर फेंक दिया। सवेरे इस बात की डांडी-सी पिट गई। सारा गाँव उस ओर उमड़ पड़ा। गैला भी आ गया। उसने जोर से हँसकर कह दिया कि उसी ने भूर-सिंह को मारा है। फिर क्या था? चार लठैत उस पर शिकारी गंडकों

(कुत्तों) की तरह झपटे, गैले ने सबको छठी का दूध याद करा दिया। तब कानसिंह ने उसे गोली मार दी। गैला मर गया। झींटिया! मरते समय भी उसके चेहरे पर हँसी थी। मुझे तो उसकी बहुत ही ओलू आती है।" ढोलकी का स्वर मद्धिम होकर टूट गया।

"हम शीघ्र ही इसके बारे में राजा जी को लिखेंगे।"

खट्-खट्, खटा-खट दरवाजे पर किसी ने दस्तक दी।

'कौन है ?" झींटिया उठकर द्वार की ओर बढ़ा।

' मैं बेटा, मैं···।"

"काका।" झींटिया ने द्वार खोल दिया। काका के सूखे चेहरे पर मुस्कान थी। ज्योंही उसने पाँव चूमे त्योंही उसके मुख से आशीर्वाद निकल पड़ा, "दिन-दिन ज्योति सवाई हो बेटा तेरी।" बात बदलते हुए उसने पूछा, "रोटी-वोटी जीमी (खाई) कि नहीं ?"

"नहीं, मैं तो ढोलकी से गाँव का हाल-चाल पूछ रहा था। खाने का ध्यान रहा ही नहीं। इतने दिनों में गाँव बहुत कुछ बदल गया है, काका ?"

दोनों आमने-सामने बैठ गये। ढोलकी उनसे काफी दूर हटकर बैठ गई। उसका मुँह भी दूसरी ओर था।

"दुनिया तो बदलती ही रहेगी। आज मैं गाँव के बारे में मास्टरजी को अच्छी तरह बताऊँगा। गैले की मृत्यु का विरोध होना चाहिये अन्यथा इन कारिन्दों का हौसला बढ़ जायेगा। हौसले के साथ उनके अत्याचार भी बढ़ जायेंगे।

"मैं भी यही सोच रहा था।"

"फिर, मैं तो आज मास्टरजी के यहाँ ही रहूँगा। तू और ढोलकी खाना ले आना, 'छोटू-मोटू जोशी' की दूकान से, समझे।···ढोलकी !" काका ने उठते हुए ढोलकी को पुकारा, "मेरे सागे चलना चाहती है तो चल।"

ढोलकी ने कोई उत्तर नहीं दिया। उसने अपनी गर्दन झुकाली।

"समझा, तू मेरे सागे नहीं चलेगी। भाई! क्यों चलने लगी?" काका ने उसे ऐसी अजीब दृष्टि से घूरा कि ढोलकी की गर्दन पर पसीना चमक उठा।

चौधरी बाहर चला गया।

"अच्छा, मैं अभी तेरे लिये खाना ले आता हूँ।"

अब ढोलकी अकेली रह गई थी। अकेले का सूनापन उसे अखर नहीं रहा था बल्कि उसकी रग-रग को पुलकित कर रहा था। वह सूनापन भी एक ऐसी मस्ती लिये हुए था जिसे यौवन चाहता है, प्रतीक्षा करता है और जब वह सूनापन उसके जीवन में आता है तो वह अपनी तमाम मधुर कल्पनाओं के चित्र अपनी मुँदी आँखों के सामने नचा लेता है।

और उसे अचानक छगा की एक बात याद हो उठी। छगा ने उसकी ठोड़ी को पकड़कर झटका देते हुए कहा था, "मेरे वे हैं न, बड़े मसखरिया (मजाकिया) हैं। जब मैं पहली बार यहाँ आई थी न, तो उन्होंने मुँह-देखणी (मुँह देखने) के पाँच रुपये देकर दीया बुझा दिया था। मैं उनसे झगड़ पड़ी। वे मुझसे बोले नहीं। मैंने कहा कि मत बोले। पर ढोलकी बाई, साजन का क्या रूठना साँझ पड़ी मन जाय। फिर रात हुई। मैं मुंह चढ़ाकर बैठ गई। उन्होंने लाख जतन किये, पर मैं टस से मस नहीं हुई। आखिर उन्होंने मेरे पाँव पकड लिये। मैं हँस पड़ी। ढोलकी! ये मर्द निगोड़े होते हैं, अड़ियल घोड़े होते हैं, इनके साथ अकड़ के बात न की जाय तो ये लुगाइयों को छब्बी (टोकरी) में डालकर बेच आयें।"

बात खत्म होते-होते दोनों हँस पड़ी थीं।

झींटिया खाना लेकर आ गया। द्वार पर कुंडी चढ़ाकर उसने आँगन में खाना रखा, "ढोलकी, जाकर वह थाली ले आ।"

ढोलकी थाली लेकर आ गई।

"मैं तेरे लिये 'छोटू-मोट जोशी' का रसगुल्ला लाया हूँ। बहुत ही

बढ़िया होता है।"

"..........।" ढोलकी ने एकदम मौन धारण कर लिया।

"अरे ! बोलती क्यों नहीं ?"

बड़ी मुश्किल से ढोलकी ने कहा, "मुझे लाज आती है।" उस लाज शब्द ने ढोलकी के सौन्दर्य में नये आकर्षण को जन्म दिया। उसने लपककर ढोलकी को अपनी बाहों में भर लिया। ढोलकी चुप थी। एक मृत्यु-सी चुप्पी घर में छा गई। लहर उठी और कूल से टकराकर नीरव हो गई।

"ढोलकी ! कल मैं काँगड़ गाँव जाऊँगा, वहाँ के गरीब किसानों का दुख-दर्द सुनने। वहाँ के ठाकुर का अत्याचार हद से अधिक बढ़ गया है। हमें उसके विरुद्ध एक नारा बुलन्द क॰ ा है, एक लड़ाई शुरू करनी है।"

"लड़ाई, नहीं, लड़ाई मत करना।"

"ढोलकी ! मैं जानता हूँ कि तू मुझे बहुत चाहती है और मैं भी। पर मास्टरजी हम दोनों को उतना ही चाहते हैं, जितना अपने आपको; इसलिए उनका कहना मानना ही होगा।"

"लौटोगे कब ?"

"बस, शाम तक।"

"लौट ही आना।" मीठी मुस्कान के साथ ढोलकी उसके दोनों कन्धों को अपने दोनों हाथों से पकड़कर झूल गई।

खाना खाने के बाद भीटिया ने अपना बिस्तरा आँगन में बिछा लिया और ढोलकी का कमरे के भीतर। दोनों अपने-अपने बिस्तरे पर सो गये। नींद उन दोनों की आँखों से कोसों दूर थी।

भींटिया ने रात बिताने के लिहाज से ढोलकी से प्रश्न पूछने शुरू कर दिए, "आज कल हरखा क्या करती है ?"

ढोलकी ने भीतर से ही उत्तर दिया, "साँझ-सवेरे गैले की समाधि पर दीया करने जाया करती है। बहुत कम बोलती है। मुलकते तो मैंने

देखा ही नहीं है।"

"मास्टर जी को याद करती है या नहीं ?"

"पहले करती थी। एक दिन मैंने उसे कह दिया कि तू बाल-विधवा है और मास्टरजी पावणा। उनसे मोह लगाकर तो तुझे पछताना ही पड़ेगा, तब से वह मास्टरजी का नाम तक अपनी जबान पर नहीं लाती है। पर याद जरूर करती है, ऐसी उसकी आँखें कहती हैं।"

"पर तूने ऐसा क्यों कहा ?"

"उसके सिर का भूत उतारने के लिये।"

झींटिया ने करवट बदलकर चुप्पी धारण कर ली, "हरखा वास्तव में नारी है। काम में बाँदी, भोजन-गृह माता, विपता में बुद्धि, ये ही तो नारी की पूर्णता के गुण हैं। उसकी किसी भी भावना को जगा दिया जाय, वह उस भावना में पुरुष से तुरन्त आगे बढ़ जायेगी—त्याग के लिये। और कृष्णा! महकता गुलाब। कुसूम्बो का प्याला···ठाकुर का अट्टहास, आन-मान-शान की चीत्कारें······उसका नीला मृत शरीर··· आग की लपटें···।"

झींटिया दहल उठा, "ढोलकी।"

"क्या? तेरी बोली इतनी आकल-वाकल (आकुल-व्याकुल) क्यों है।" वह उसके सिरहाने आकर बैठ गई।

"बेचारी कृष्णाकुंवर मर गई, उसे कुसूम्बो पिला दिया गया, जहर से वह नीली हो गई थी।"

तब ढोलकी ने रोते-रोते अपने आँचल से झींटिया के मुंह का पसीना पोंछा। सिर थपथपाया तब झींटिया को नींद आने लगी। ढोलकी कह रही थी, "बेचारी कृष्णा लालकुंवर जैसी दुष्ट नहीं थी।"

: २० :

सवेरा होने के कुछ देर पूर्व ही झींटिया की नींद उचट गई। वह उठकर अपनी उनींदी पलकों में जागरण का आह्वान करने लगा। अंधेरे की धूमिल अलकें अब भी ऊषा रानी के आनन पर आच्छादित थी। प्रतीची के छोर पर भोर का तारा झिलमिला रहा था। पुरवैया का मदिर स्पन्दन तरंगायित होकर तन में गुद-गुदी उत्पन्न कर रहा था।

वह उठा और ढोलकी के सिरहाने बैठ गया।

ढोलकी प्रगाढ़ निद्रा में निमग्न थी। धनुषाकार कटी फाँक की तरह उसके स्वर्णिम-अरुणिम अधरों पर यौवन की लुनाई चमक रही थी। वह निर्निमेष दृष्टि से देखता रहा। उसके हृदय में आकुलता का तूफान-सा उठा। मन दुर्बल हो रहा था और नैतिकता उस दुर्बलता से संघर्ष कर रही थी। उसने अपने अधीर मन से ढोलकी की हथेलियों को देखा। हथेलियाँ खुरदरे पत्थर की तरह थीं। उसने हथेलियों की जहाँ-तहाँ उखड़ी चमड़ी मे श्रम के महान् देवता के दर्शन किये। वह अज्ञात श्रद्धा से कुछ देर के लिये नतमस्तक हो गया।

इसके बाद उसने ढोलकी को जगाने के लिये झिंझोड़ा। वह ऊँघ करके रह गई। एक अलक अनजाने उसके गाल को चूमने लगी।

"यह नींद में मग्न है। चिन्ताओं मुक्त इसी नींद की हर व्यक्ति कामना करता है। लेकिन कल से...।" झींटिया सोच बैठा। "कल से इसकी सुख देने वाली नींद चिन्ताओं के साँप चारों ओर से घेर लेंगे और अपने जहरीले फनों से उसे एक पल के लिये भी नींद नहीं लेने देंगे।

उसे कोने में फैले अन्धकार में दैत्य की विकराल आकृति दीख पड़ी। वह दैत्य इतनी भेद-भरी हँसी हँस रहा था जैसे वह कह रहा था—ए मनुष्य ! तेरे सुख के क्षण बहुत ही कम हैं और दुख के चिरंतन। तू

स्वतन्त्रता का सेनानी है, कठोर कर्तव्य ही तेरा धर्म है।

झींटिया को दैत्य की आकृति धुंधली होती हुई जान पड़ी और देखते-देखते उस अन्धकार के आवरण को भेदता हुआ प्रकाश सम्पूर्ण निर्मलता लिये चमक उठा। उस प्रकाश में मास्टर का दिव्यानन सूरज की भाँति प्रकाशमान हो उठा, "उठ झींटिया, तेरे लिये यह मोह-बन्धन हितकर नहीं। जब मनुष्य व्यक्तिगत स्वार्थों का सम्मोह छोड़कर समूह के हितों के लिये संघर्ष करता है तो उसे अपने व्यक्ति का किंचित शोषण भी करना पड़ता है। तुझे भी अपने व्यक्ति की प्रबल महत्वाकांक्षा का परित्याग करना होगा। उठ, जाग! देख, प्रभात हो गया है, प्रभात। तेरे नये जीवन का संघर्षमय प्रभात।"

झींटिया ने आवेश में ढोलकी को जगा दिया। वह हड़बड़ा उठी, "क्या है ? ऐसे क्यों झिझोड़ रहा है ?" उसने अपने दोनों हाथों से उसके कन्धे पकड़ लिये।

"मैं जा रहा हूँ ?" उसने दृढ़ता से कहा।

ढोलकी के मन से निद्रा का बादल हट गया। वह सावधान होती हुई टूटते स्वर में बोली, "कहाँ जा रहे हो ?" उसने अपने दोनों हाथों से झींटिया को पकड़ लिया।

"कांगड़ गांव। ढोलकी आज से तेरा झींटिया तेरा ही नहीं, उन सभी गरीबों का है जिन्हें ये ठाकुर व धन वाले रात-दिन सताते हैं।"

"लौटोगे कब ?"

"कह नहीं सकता, दैत्यों और मनुष्यों का युद्ध है। कौन जीतेगा और कौन हारेगा, कह नहीं सकता ? लेकिन आखिरी जीत हमारी ही होगी, बिलकुल हमारी।"

"पर तुझे यह बताकर जाना ही होगा कि तू कब तक का पूठो (वापिस) आ जायेगा, नही तो मैं तुझे जाने नहीं दूंगी।" उसने झींटिया का हाथ कसकर पकड़ लिया। वे दोनों एक-दूसरे के सामने बैठ गये।

झींटिया ढोलकी को हार्दिक सांत्वना देने में सर्वथा असमर्थ रहा।

ढोलकी रो-रोकर निढ़ाल होने लगी। वह भींटिया की वक्ष में अपना मुंह छिपाकर सिसकने लगी। कुछ देर दोनों मौन रहे। अश्रुओं के बह जाने पर हृदय की समवेदना कुछ कम हुई।

भींटिया उसको सहलाता हुआ बोला, "घबराती क्यों है? बात नहीं बिगड़ी तो मैं शाम तक आ ही जाऊँगा, नहीं तो देखा जायेगा। लेकिन तू अपने मन को कमजोर न कर। तेरा मन सहजोर होगा तो मैं जरूर आऊँगा, जरूर आऊँगा।"

और उसने ढोलकी को प्रगाढ़ आलिगन में आबद्ध कर लिया। क्षितिज होंठों को चूमता हुआ सूरज निकल रहा था। पूरब में प्रकाश धीरे-धीरे बढ़ रहा था कि काका ने अपने आने की सूचना द्वार खट-खटाकर दी। ढोलकी द्वार खोलकर काका के सीने से लिपट गई। काका को बात समझने में देर नहीं लगी। वह उसका सिर सहलाता हुआ कहने लगा, "तुझे जितना दुख है बेटा, उतना मुझे भी है पर भींटिया को रोक कर हम महापाप कर बैठेंगे। तू नहीं जानती कि भींटिया का सर्वनाश करने वाले ये ठाकुर लोग ही हैं, इसलिये इनका नाश करने में भींटिया को अपना सर्वस्व लगा देना चाहिये; यहाँ तक कि अपने प्राण तक दे देने चाहियें।" अपने स्वर को जरा धीमा किया, "और फिर तू चिन्ता क्यों करती है? तेरे भींटिया का बाल भी बाँका नहीं होगा। वह मरेगा नहीं, उसे कोई नहीं मार सकता, वह अमर है।" चौधरी की आँखों में विश्वास बोल उठा।

भींटिया ने काका के पाँव पकड़ लिये। उसकी आँखों में अश्रु बह उठे—स्नेह, प्रेम और कर्तव्य के साक्षात प्रतीक।

× × ×

मास्टर ने उन्हें नयी शक्ति, नयी प्रेरणा और नये जोश के साथ विदा कर दिया।

"साथियों?"

तुम्हारे साथ राज्य की वह शक्ति नहीं है जो किराये पर खरीदी

जाती है लेकिन जनता की अपराजेय शक्ति है जो विजय की दुन्दुभी बजा-बजाकर रहेगी। तुम लोगों के लिये संघर्ष की शाश्वतता अति आवश्यक है। इसलिये तुम ठाकुर के अत्याचारों को अपनी नजरों के सामने रखो। पलभर के लिये यह न भूलो कि ठाकुर अपने १५० व्यक्तियों द्वारा गाँव में एक क्रूरता का साम्राज्य स्थापित कर नया आतंक पैदा किया हैं।... स्त्री-बच्चों...धन-सम्पति सब पर अनाधिकार कायम किया हैं। अमानुषिक अत्याचार का जिन्दा बाजार लगा दिया है। स्त्रियों की इज्जत पर अपने अपराधों के दाग लगा दिये हैं। तब तुम्हारा जोश ठन्डा नहीं होगा। अत्याचार की याद ही संघर्ष की आग है, विद्रोह की शाश्वतता है।"

तब शिष्टमण्डल का कारवाँ पैढ़ल ही चल पड़ा।

दुपहरी की तपती धूप में वे सब काँगड़-ग्राम की सीमा पर पहुँचे। मार्ग में जो भी किसान मिला उसने रोते-रोते ठाकुर के अत्याचारों की कथा कहीं। औरतों ने ठाकुर के व्यक्तियों द्वारा किये गये नंगे जुल्मों के दाग छातियों पर दिखायें। झींटिया का हृदय भर उठा। उसने एक औरत के पाँव पकड़कर कहा, "माँ! यदि हममें सच्चे किसान का खून है, तो हम इस अत्याचार को समाप्त करके ही रहेंगें।"

रंगा ने भरयि स्वर में उस औरत को आश्वासन दिया, "यह दाग़ तेरे सीने का नहीं है, यह दाग़ भारत माँ का है और भारत माँ का सपूत अब जाग रहा है, वह जुल्म का प्रतिशोध लेकर रहेगा ही। माँ, तू धीरज धर।"

एक अबोध बालक ने रोते हुए अपना दायाँ पाँव दिखलाया जो किसी नृशंस ठाकुर-चाकर के नालदार जूतों से कुचला गया था, "देखो! देखो, मेरे पग को देखो · माँ! माँ, बड़ी पीर हो रही है, बहुत जल रहा...माँ...माँ।"

झींटिया ने उसे अपनी छाती से चिपका लिया। उसके मासूम चहरे पर शत-शत चुम्बनों की वर्षा कर दी, "मत रो मेरे बच्चे, मत

रो। तेरा यह भाई तेरे उस पाँव का बदला लेगा, ठाकुर का पाँव नहीं, सिर कुचल देगा।" यह सुनकर बच्चे के मुख पर आँसुओं-भरी मुस्कान नाच उठी।

दर्द का कारवाँ कदम-कदम पर मिलता गया।

गाँव की सीमा आ चुकी थी।

केदार ने एकाएक सबको रोकते हुये कहा, "ठहरो। हम गाँव में जाकर क्या करेंगे? गाँव वालों के मुख से दुख-दर्द सुनकर यह तो पता चल ही गया कि ठाकुर ने अत्याचार किया है।"

झींटिया चुप नहीं रह सका, "हमें ठाकुर से मिलना चाहिये।"

केदार ने टोकते हुए विनीत स्वर में निवेदन किया, "जिस कार्य की तहकीकात करने के लिये हमें भेजा गया है, वह तो पूरा हो ही गया।"

तभी धूल के बादल उठते हुये उनकी ओर आये। वे टकटकी लगाकर उनकी ओर देखने लगे। घोड़ों और ऊँटों पर लगभग बीस व्यक्ति उनके सामने आ धमके। उनके हाथों में बन्दूकें, भाले और तलवारें थीं। उन्होने आते ही सेनानियों को भालों से घेर लिया, "चलो, ठाकुर साहब के डेरे पर।"

झींटिया क्रोध से भड़क उठा, "नही चलेंगे।"

एक सवार जोर का अट्टहास कर उठा, "नही चलोगे? गादड़े की मौत आती है तब गाँव की ओर भागता है। देखा है, यह भाला, एक ही चोट में कलेजा चीरकर रख देगा।"

केदार ने झींटिया को शांत किया।

सभी सेनानी डेरे लाये गये।

ठाकुर का डेरा बहुत ही बड़ा था। उसके चारों ओर छोटी-छोटी झोंपड़ियाँ थीं जिनमें उनके गोले और गोलियाँ रहती थीं। डेरे का रंग लाल था और उसकी बनावट में प्राचीन और अर्वाचीन कला का सुन्दर अपरिपक्व सामंजस्य था।

ठाकुर को इनके आने की सूचना प्राप्त होते ही बाहर आया।

उसके घिनौने चेहरे पर बड़ी-बड़ी मूँछें साँप के फन जैसी लग रही थीं। उसके हर कदम की आवाज के साथ उसके अन्तर की पैशाचिकता प्रकट हो रही थी।

आते ही मुंह बिचकाकर बोला, "ले आये, इन बकरों को, सबकी खाल उधेड़ दो।"

सबको नंगा कर दिया गया। झींटिया ने हाथ-पाँव चलाने की कोशिश की तो उसके सिर पर से दो जूते मार गए।

"चींटी होकर फड़फड़ाता है हरामजादा! घासिया लगा तो मुक्के की इसके गाल पर।"

एक मुक्का झींटिया के गाल पर लगा। खून का फुव्वारा छूटा जो उसके होठों पर फैलकर नंगी छाती पर छितर गया।

ठाकुर केदार की ओर लपके, "तो तू गाँव वालों का हिमायती बन कर आया है।"

"हाँ।"

तभी ठाकुर का एक आदमी आगे बढ़ा। सलाह के स्वर में सेनानियों से बोला, "भला चाहते हो तो ठाकुर सा के पाँव पकड़कर माफी माँग लो और कान पकड़कर कह दो कि अब हम आपको सदा माई-बाप मानेंगे।"

"नहीं! थू है इस पर।" रूपाराम भड़का। आग सीना तानकर खड़ा हो गया।

"मार-मार, साले के जूतों की मार।" ठाकुर लाल-पीला हो गया। उसने भी कूदकर रूपाराम के पेट पर एक जोर की लात जमा दी। वह अर्द्ध मूर्छित हो गया।

अब रंगा की सहन-शक्ति आपे (दायरे) से बाहर हो गई, "ठाकुर! यह अत्याचार कितने दिन का है? सौ दिन सुनार के बाद एक दिन लुहार का भी आयेगा तब···?···तब तेरी मूँछों के एक-एक बाल को तोड़ देंगे। तू बिलबिलायेगा और यह सारा गाँव तेरा तमाशा देखेगा।"

"अरे ! वह दिन आयेगा तब आयेगा । रामिया, साँचिया, हाथूड़ा, सब-के-सब कहाँ मर गये, ले आओ कोड़े और इन सबकी खाल उधेड़कर रख दो ।"

तभी ठाकुर सा का बेटा आ गया । बाप को रोककर वह अधिकार पूर्ण स्वर में बोला, "तुम लोगों ने यह गड़बड़ी क्यों मचा रखी है ?"

"यह गड़बड़ी नहीं, आन्दोलन है ।" केदार ने उत्तर दिया । उसके उत्तर में सबका स्वर मिल गया, "अत्याचार के खिलाफ सच्चाई का आन्दोलन है । यह कभी भी बन्द नहीं होगा ।"

"नहीं ।" एक झटका दिया बड़े राक्षस के बेटे छोटे राक्षस ने, 'यह प्रजा-परिषद् की गुण्डागर्दी है । प्रजा-परिषद राज्य के तख्त को उलटना चाहती है ।"

"नहीं, प्रजा परिषद जनता के अधिकारों व हितों के लिये उचित संघर्ष करने वाली संस्था है ।"

"तो तुम लोग जवाहरलाल नेहरू और जयनारायण व्यास से क्यों सम्बन्ध रखते हो ?"

"आप अपने राजा से क्यों सम्बन्ध रखते हैं और आपका राजा बर्तानियाँ हकूमत के तलवे क्यों सहलाता है ?"

"तुम लोग यहाँ क्यों आये हो ?" वह उत्तर सुने बिना प्रश्न पर प्रश्न करता जा रहा था ।

"गाँव वालों के अत्याचारों की जाँच करने ।"

"तुम कौन हो जाँच करने वाले ?"

"प्रजा-परिषद विपद-ग्रस्त लोगों की सहायता करना अपना मानवीय-कर्त्तव्य समझती है ।"

"इस कर्त्तव्य-वर्त्तव्य के फेर में जान गवाँ बैठोगे: खैर इसी में समझो कि ठाकुर सा के पाँव···।"

"हम पाँव क्या, क्षमा भी नहीं मागेंगे ।"

बड़े राक्षस ने छोटे राक्षस को धक्का देकर दूर ठेल दिया, "ये लातों

के देव बातों से नहीं मानेंगे। इष्टदेव की तो भ्रष्ट पूजा ही होनी चाहिये। मारो कोड़ों और डंडों से।"

राक्षस की आज्ञा पाते ही लगभग बीस आदमी उन पर टूटे पड़े। लातों, घूँसों, डंडों और कोड़ों से पीटते-पीटते उन्हें अचेत कर दिया। वे जलती हुई रेत पर गिर गये।

ऊपर सूरज तवे की तरह तप रहा था और नीचे भूमि आग की तरह दहक रही थी लेकिन उन्होंने क्षमा नहीं माँगी। युगों से चली आई शहीदों की आन को उन्होंने जुल्म के धधकते कुंभी-पाक में बनाये रखा। मर जायेंगे पर शान नहीं छोड़ेंगे।

ठाकुर ने अपने ललाट के पसीने को पोंछते हुए कहा, "हमें गर्मी सता रही हैं, हम चलते हैं, शर्बत पीने के लिए और इन हरामजादों को कराहने तक मौका न दिया जाय।"

ठाकुर ने फिर मूँछों पर ताव दिया। उनकी मूँछों में आज बल नहीं पड़ें। ठाकुर की आत्मा को जोर का धक्का लगा, "मेरी मूँछों में बल क्यों नहीं आये, हाथूड़ा! एक को नंगा करके सारे गाँव में जूतियों से पीटते हुये घुमाओ ताकि गाँव वाले जान जायें कि ठाकुर कितना बल-शाली है? गाँव वालों की आवाज का कोई मूल्य नहीं, स्वयं राजा भी मेरा भाई-बन्धु है।" उसने अट्टहास किया और वह यह गुनगुनाता-मोरे सैंया भये कोतवाल, अब डर काहे का?—डेरे के भीतर चला गया।

चार व्यक्तियों ने रूपाराम को घसीटते-घसीटते सारे गाँव में घूमाया। वह नंगा था। उसके बदन पर कोड़ों के हृदय विदारक निशान थे। उस पर धड़ाधड़ पड़ते हुये और कोड़े ग्रामीणों में कपकपी उत्पन्न कर रहे थे। किसी-किसी कमजोर हृदय की औरत ने पीटते हुये रूपाराम की दुर्दशा देखकर अपने मुंह को घूंघट में छुपा लिया और भगवान् से प्रार्थना की कि इस ठाकुर को काला डस जाय, इसको मरते समय पानी देने वाला न मिले। हमारी हाय से इसका सत्यनाश हो जाय। ओह! इन राठौड़ों का क्या सच्चा धर्म यही है?

रूपाराम को सारे गाँव में घूमाकर घटनास्थल में अचेत की अवस्था में जमीन पर फेंक दिया गया। तब तक शेष सेनानियों को जरा होश आने लग गया। उन्होंने जैसे ही हरकत की तभी ठाकुर के दरिन्दे आदमियों के चेहरों पर क्रूर मुस्कान नाच उठी। वे उन्हें फिर पीटने के लिये उठे। ठाकुर के एक-दो व्यक्तियों ने तो उठक-बैठक भी की।

इस बार उन सबने सेनानियों को उल्टा सुला दिया। डेरे के भीतर से कैंची मंगवाकर उन नर-पिशाचों ने उन सबकी चोटियों को काटा। यज्ञोपवीतों को तोड़ा। तभी उन्हें आनन्द नहीं आया तो उनके गुप्तांगों में नुकीले डंडे घुमाये गये। सेनानी एक मार्मिक वेदना मे कराह उठे। कुछेक ने इस काम को पूरा करने के लिये सुइयों से काम लिया। गुप्तांग्रों में जैसे-जैसे सुइयाँ चुभती थीं वैसे-वैसे सेनानी जलन के मारे हाय-तोबाकर उठते थे।

डेरे की गोलियाँ डेरे की छत पर चढ़कर यह कुकृत्य देख रहीं थीं। कुछेक की आँखों में अश्रु भर आये थे। वे मन-ही-मन मानो भगवान् से प्रार्थना कर रही थी कि हे प्रभु! इन निर्दोष वीर सेनानियों को साहस दे ताकि यह इतने सबल बन जाय कि अत्याचार की हर चोट इन्हें फूल मालूम दे जिससे ये हम सबका उद्धार कर सके।

साँझ पड़ने पर ठाकुर साहब आये। सेनानियों के गुप्तांगों में सुईयाँ चुभाते-चुभाते ठाकुर के आदमी थक चुके थे। उनकी अंगुलियाँ इन्सानी खून से लाल हो उठी थीं।

ठाकुर ने कहा, "सबको चित्त लेटा दो।"

चित्त होने के बाद ठाकुर ने देखा तो उसका खून जलकर राख हो गया। सेनानियों के अधरों पर अमिट-अमर मुस्कान नाच रही थी। ऐसा मालूम होता था जैसे गोलियों की आर्तनाद-भरी मौन और गाँव वालों की सच्ची विनय को प्रभु ने सुनली और इन्हें सहने की अपरिमित शक्ति दे दी है।

"हमसे अब भी माफी माँग लो।" ठाकुर ने अपने दोनों हाथों को

हिलाकर कहा।

सबने अस्पष्ट स्वर में कहा, "नहीं।"

"नहीं।"

"मारो, तब तक मारते रहो जब तक इनकी आँखें झुक न जाय और हाँ, इस बात का ध्यान रहे, इनमें मरने एक भी न पाये।"

कारिन्दों ने फिर पीटना शुरू किया और सेनानी मूर्छित हो गये।

× × ×

साँझ का भयानक अन्धकार गाँव पर छाने लगा था। १८५७ के स्वतंत्रता-संग्राम की विफलता के पश्चात् जिस तरह अंग्रेजों ने दिल्ली शहर में कत्ले-आम मचाकर आँतक फैलाया था, ठीक वैसा ही आतंक सारे गाँव में छा गया। गाँव की औरतों ने सूरज छिपते-छिपते अपने बच्चों को अपने-अपने आँचलों में छुपा लिया। विद्रोही किसानों ने सेनानियों की सहानुभूति में दूध के कटोरे नहीं भरे। उन्होंने दीपक तक नहीं जलायें। खाना तक नहीं खाया। एक आग उनके हृदय में जल रही थी। वह आग अब किसी विशिष्ट की प्रतीक्षा मे थी।

उसी शून्यता को चीरते हुये दो ऊँट ठाकुर के डेरे की ओर आ रहे थे।

एक ऊँट पर शहर की प्रसिद्ध वेश्या थी और दूसरे पर दो मिरासी थे जिनके पास गाने का साजो-सामान था। उन दोनों ने उतरकर अदब के साथ ठाकुर की जय जयकार की, "खम्मा अन्नदाता ने।"

अन्नदाता ने हल्का-हल्का कुसूम्बा ले रखा था। उसके कदम डगमगाये। वेश्या ने निर्लज्जता-भरी मुस्कान के साथ ठाकुर का मुजरा किया। उन्हें ठाकुर के खास बैठकखाने में ले जाया गया। ठाकुर के इस बैठकखाने में बड़ी-बड़ी मशालें जल रही थीं। उन मशालों में सामन्तवाद की जर्जरित होती संस्कृति और सभ्यता की विकृति कला का बाना पहन कर दीवारों पर लगी हुई थीं, अश्लील कामोत्तेजक तस्वीरें।

फर्श पर आलीशान गद्दा था और उसके नीचे जेल के अपराधियों

द्वारा बना हुआ कालीन ।

मिरासियों ने तबले पर थाप लगाई । धन् की आवाज डेरे की दीवारों से टकरा उठी और उस तबले की आवाज से सेनानियों की कराह का संघर्ष हो गया । कराह ने तबले की आवाज पर विजय पाई ।

आज ठाकुर ने विशेषरूप से अपने गोले लालिये द्वारा कुसूम्बो तैयार करवाया था । उसकी एक चुस्की लेते हुये ठाकुर ने झूमकर कहा, "आने दे, कलेजे का टुकड़ा कर देने वाली तान ।"

वेश्या खड़ी हो गई । उसने अपने हाथ ठाकुर के हाथ में दे दिये । ठाकुर ने एक बार कुसूम्बे की चुस्की ली ।

"अब क्यों मोड़ा कर रही है ?"

"आप मेरे घुंघरू तो बाँध दीजिये ?"

"हम !" ठाकुर जैसे चौंक पड़ा ।

"आज मैं आपसे ही बंधवाऊँगी ।" वेश्या ने अपना पाँव ठाकुर की ओर बढ़ा दिया । ठाकुर की अतृप्त वासना उसके होठों पर बुझी-बुझी-सी मुस्कान बनकर चमक उठी । उसने अपने हाथ में घुंघरू उठाकर एक पल के लिये देखा और फिर वह बाँधने लगा । वेश्या अपनी इस विजय पर दंभ से मुस्करा रही थी । दोनों मिरासी उसकी इस चालाकी पर आँख के इशारे के साथ उसे वाह्-वाह् दे रहे थे ।

वेश्या ने नाचकर पूरा चक्कर काटा और गीत आरंभ किया :

*"अमल तू उणमादियो सेणा हन्द सण
था बिन घड़ी अन आवड़े, फीका लागे नैण
भरला ए सुघड़ सजनी, दारुड़ो दाँखा रो······
पीवणवालो लाखों रो······
भरला······

दारु पियो रंग करो, राता राखो नैण

---

*शराब सम्बन्धी एक लोक-गीत ।

वैरी थारौं जल मरै, सुख पावेला सैंण
भरला ए सुघड़ सजनी, दारुड़ो दाखाँ रो
पीवणवालो लाखों रो······
दारू तो झक-झक करै, सीसी करै पुकार
हाथ प्यालो धण खड़ी, पीओनी सरदार
भरला······
दारू दिल्ली आगरो, दारू बीकानेर
दारू पियो साहिबो, कोई सौ रुपयों रो फेर······
भरला······

सौ रुपये के फेर ने ठाकुर को फेर दिला ही दिया। उसके हाथ से उसने सौ का नोट छीन लिया। नोट को उसने अपने साथ आये मिरासियों को दे दिया।

नृत्य चल रहा था।

लालिया अब भी अफीम घोल-घोल कर कुसूम्बो बना रहा था। जब नशा हद से अधिक बढ़ने लगा था तब लालिये ने सहमते-सहमते प्रार्थना की. "माई बाप ! आज तो···।"

"तेरे बाबे जी का क्या लगता है, दे कुसूम्बो आज हम कुसूम्बो में डूब जाना चाहते हैं। सब को बाहर निकाल दो।"

सब बाहर चले गये।

जनता की लड़ाई के बहादुरों को धीरे-धीरे पुनः होश आने लग गया था। उनकी पिटाई फिर से की गई।

वेश्या की गोद में ठाकुर हिचकियों के साथ गिरा, तू···तू···। इन प्रजा परिषद वालों को आग में···। ओह ! मेरा गला···गला··· गला··।"

ठाकुर का स्वर टूट गया। वेश्या ने चिल्लाकर द्वार खोला, "ठाकुर साहब को क्या हो गया, क्या हो गया ?"

डेरे की दीवारों के लाल पत्थर चिघाड़ उठे, "ठाकुर मर गया,

ठाकुर मर गया। कुसूम्बे के जहर ने उनके प्राण हर लिए।"

डेरे में कुहराम मच गया, "ठाकुर सा मर गये।" सेनानी मुस्करा उठे और विद्रोही किन्तु विवश किसानों ने दूध के कटोरे भर-भर पिये।

: २१ :

चौधरी काका अपने आँसुओं को अंगोछे से पोंछते हुये आर्द्र स्वर में बोले, "अब तेरा झीटिया कभी नहीं आयेगा। बेटा, कभी नहीं आयेगा।" दुख से उसका कलेजा फटा जा रहा था।

ढोलकी को महसूस हुआ कि उसका भी कलेजा मुँह को आ रहा है। उसकी नस-नस पीड़ा से फट रही है।

"ऐसे अशुभ बोल मत निकाल काका, वह जरूर आयेगा, वह जरूर आयेगा।"

उसी समय मास्टर ने घर में प्रवेश किया। उसके चेहरे पर उदासी थी। उसके उठते कदम उदास थे। ढोलकी को चुप कराता हुआ कहने लगा "बेटा! वह आयेगा। आज अन्याय का सहारा लेकर यह सामन्त-वाद का गढ़ बर्तानिया हकूमत को पुष्ट करने के लिये जनता के जागरण को, स्वतन्त्रता संग्राम को किसी झूठ की आड़ लेकर दबा सकता है। लेकिन क्या तू समझती है कि ज्वालामुखी सदैव धरती के गर्भ में भड़-कता रहेगा? क्या वह कभी फूटकर बाहर नहीं आयेगा? वह आयेगा, वह जरूर आयेगा तब यह वेश्या झूठ नहीं बोलेगी। यह कानून के कट-घरे में खड़ी होकर कहेगी, यह देश के सेनानी निर्दोष हैं। मैंने इसलिए झूठ बोला क्योंकि मुझे सत्ता के अधिकारियों ने धमकी दी थी कि यदि तू ने यह नहीं कहा कि इन लोगों ने ठाकुर को मारा है तो तुम्हें गोली

से उड़ा दिया जायेगा।'''तब हस्पताल का डाक्टर लाश के पोस्ट-मार्टम के बारे में अपनी ईमानदारी का गला नहीं घोंटेगा। तब तेरा झींटिया, काका बेटा और यह सारे सेनानी आजाद हो जायेंगे। तब झींटिया का बाप और उसकी मां अपने बेटे पर आकाश से फूलों की वर्षा करेंगी क्योंकि तब तक उसके झींटिया ने तमाम झींटियों के माता-पिताओं को सामन्तों के खूनी शासन से मुक्त करा दिया होगा'''और तू रोती है ?"

लेकिन ढोलकी का रोष अन्याय के विरोध चुप नहीं रह सका, "तुम सबका नाश हो। मेरे झींटिया को सताने वालो ! तुम पर बिजलियाँ गिरे।

वह रो उठी। आज उसके मुख की सजलता और कोमलता एक भयंकरता में बदल गई। उसका सौंदर्य जो शीतलता प्रदान करता था, आग बरसा रहा था। वह रोते-रोते थक गई।

"तू झींटिया को बहुत चाहती है न, हृदय से प्रेम करती है न, जरा अपने हृदय के आन्तरिक्ष के भावरूपी तारों की आँखों से अपने आपको देख, तेरा झींटिया तेरी आँखों में मिल जायेगा, यह कहता हुआ कि मैं तुझ में हूँ,। विधाता ने तुझे प्रेम दिया है, जीवन में नई प्रेरणा देने के लिये ताकि दुःख और सन्ताप में तेरी यह आशा कि झींटिया एक दिन जरूर आयेगा, बनी रहे।" मास्टर की आँखों में तेज चमक रहा था।

"तो क्या वह आयेगा ?" हठात् ढोलकी ने पूछा। उसके आँसू मुस्करा उठे।

"अपने झींटिया से पूछ, मैं क्यों बताऊँ ?'''अच्छा काका ! हमें झींटिया से मिलने का समय मिल गया है, दोपहर को जेल चलना है और कल से हमें नये आन्दोलन का भी श्री गणेश करना है। हम जुल्म को चुपचाप नहीं सहेंगे। सत्य के लिये लगातार संघर्ष करेंगे। मरेंगे पर अधिकार लेकर छोड़ेंगे।"

कहते-कहते मास्टर चला गया। काका बिस्तरे पर आँखें मूंदकर अपने गाँव के मिटते महलों के खंडहरों को देखने लगा।

और ढोलकी द्वार पर बैठी-बैठी रुआँसी से स्वर में गा उठी। उसके स्वर में एक दर्द था, पत्थर को पिघला देने वाला दर्द :

"होजी मारु रे मसल्यो, मसल्यो तेल चम्पेल,

रे पाटी हे तो पाड़ी हे म्हारी 'मूमल' रोणी जोणू मेण सूंए।

प्रतीक्षा में आकुल मूमल राजा महेन्द्र की राजधज के इन्तजार कर रही है। तारों भरी रात है। फूलों से शय्या सजी हुई है। वह दूर एक टक निगाहें जमाती हुई कह रही है कि ये मेरे महलों में रहने वाले! अब तो आजा, मैं अकेली तुझ बिन सेज पर डर रही हूँ।

पर राजा महेन्द्र अपनी प्रेमिका को बिलखती छोड़कर चला गया। नहीं आया, जीवन भर नहीं आया।

ढोलकी ने अपना गीत बन्द कर दिया। एक नई आशा उसके अंग-अंग में जाग उठी, "पर मेरा झींटिया अवश्य आयेगा। क्योंकि वह अपनी ढोलकी को सन्देह से नहीं देखता है। जुग-के-जुग बीत जायेंगे, उसकी ढोलकी उसकी अडीक में बुड्ढी हो जायगी तो भी झींटिया उसे छाती से लगाकर कहेगा, तू मेरी ढोलकी है न, देख, मैं आ गया हूँ। मैं तुझे कभी भी एक क्षण के लिए नहीं भूला, मैं तुझे ही प्रेम करता हूँ, केवल तुझसे ही ढोलकी।"

तब गाँव के छोटे-छोटे बच्चे नाच-नाच कर कहेंगे, किसका झींटिया किसका टम, चाल म्हाँरी ढोलकी···ढमाकढम···ढमाकढम · ढमाकढम।

ढोलकी के आँसू उसके मुस्कराते अधरों पर आकर रुक गये।

× × ×

झींटिया ने जेल के सींकचों से अपने हाथ निकालकर ढोलकी का अन्तिम बार स्पर्श किया, "तू निशंक रह, मैं जरूर आऊँगा। आज हम गुलाम हैं, कल हम निश्चित रूप से आजाद होंगे तब तेरा यह झींटिया आजाद होकर आयेगा। तू मेरी अडीक करना।" उसकी आँखें छल-

छला आई ।

'मैं तेरी भर जीवन अडीक रखूंगी, तू नहीं आवेगा तो कुंवारी ही प्राण दे दूंगी, पर तुझे नहीं भूलूंगी, तू मेरा झींटिया है न ?"

"मैं जरूर आऊंगा।" उसका दृढ़ संकल्प बोला, "यह मास्टर अपने हाथ में स्वतंत्रता का झंडा लिए खड़ा है, कभी यह स्वतंत्रता लेकर ही छोड़ेगा; उस समय मिट्टी का कलंक मिट जायेगा और तब मैं जरूर आऊँगा···स्वतंत्रता का प्रहरी बनकर, स्वतंत्र देश का स्वतंत्र आदमी होकर···चिंता न कर ढोलकी, हँस हँस···हँस न।"

लेकिन ढोलकी ने रोते-रोते झींटिया के चरण स्पर्श कर लिये। "काका।" झींटिया ने रोते-रोते कहा। ये ममता के आँसू थे जिन्हें झींटिया अब नहीं रोक सका। बह ही गए, "सभी को मेरा प्रणाम कहना; बड़े-बुढ़ों, बच्चों और हरखा को भी।···अच्छा प्रणाम, प्रणाम मास्टरजी, प्रणाम। मेरे देश तुम्हें भी प्रणाम·· धरती तुम्हें भी ··।" सब बाहर चले आये और जेल के द्वार बन्द हो गये।

बाहर कोई गा रहा था :—

जागो, जागो हे महाकाल······

॥ समाप्त ॥